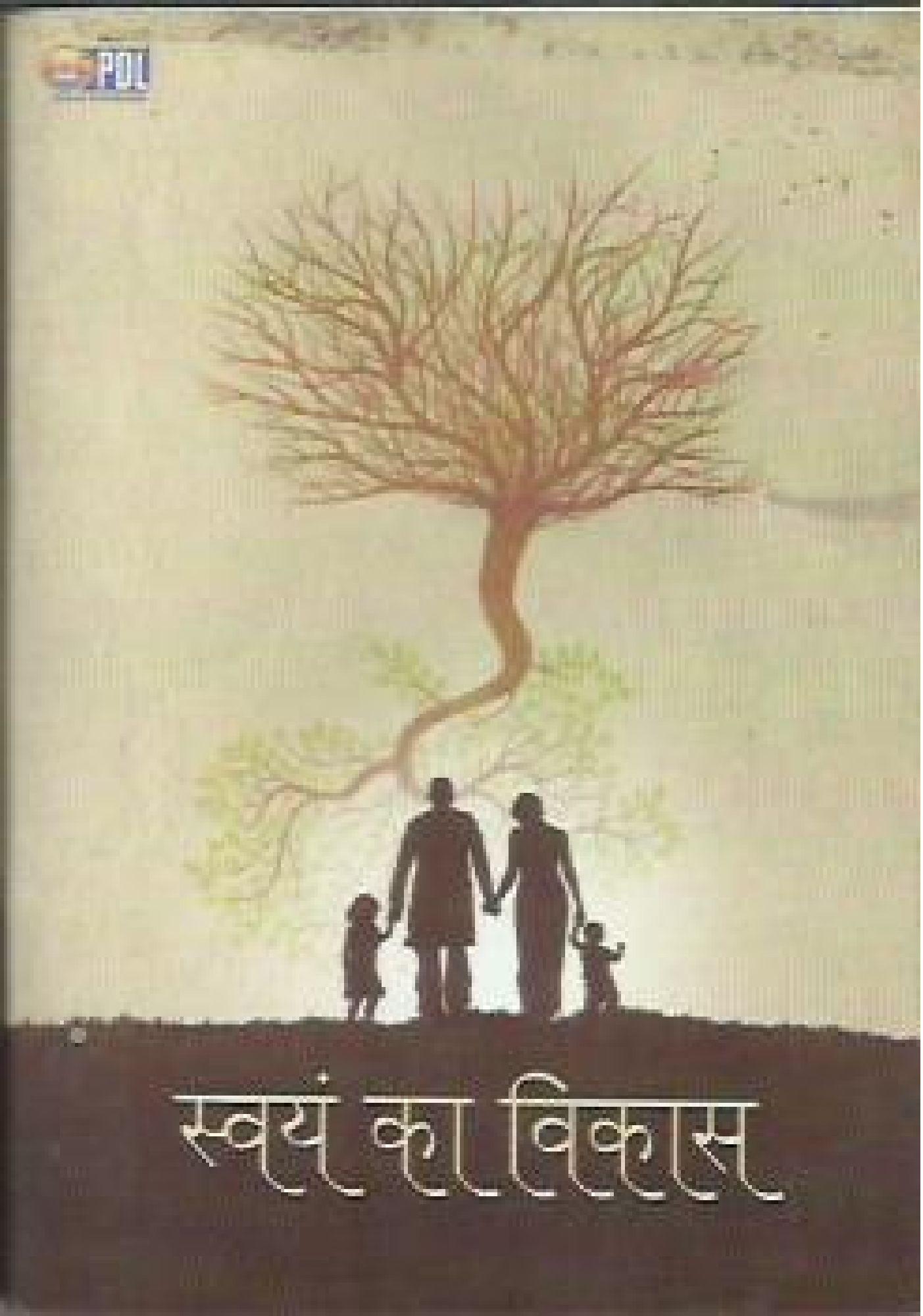

स्वयं का विकास

PDL

Known To Unknown

एकात्मता ही मानवता धर्म है।
दिव्यता उसका गुण है।
परोपकार उसका आचरण है।
निःस्वार्थ प्रेम उसका स्वभाव है।

सोचो तुम क्या चाहते।
जो चाहते हो वही सोचो।
जो सोचते हो वही देखो।
जो देखते हो वही मांगो।
जो मांगोगे वही मिलेगा।

स्वयं का विकास

महर्षि अरविन्द फाउन्डेशन
(मुंबई)

महर्षि पब्लिकेशन कार्यालय :
122, माधानी इस्टेट, सेनापती बापट मार्ग,
दादर (प), मुंबई 400 028.
दूरभाष : 2422 3202
ई-मेल : info@pathofdivinelife.org
वेब साईट : www.pathofdivinelife.org

संकलन
श्री. अरविन्द

मुख्य पृष्ट संकल्पना
अनिल वरणे

मुद्रक
राजेश आर्ट, मुंबई

दान राशी :
10/-

प्राक्कथन

मानव का मन विचार तरंग के गतिमान से निर्मित होता है। यहाँ विचार समाप्त होकर पूर्णत्व प्राप्त होता है। जीसके कारण अस्तित्व चेतना से सारा विश्व चलता है। उपासना आत्मतत्व कि पुनर्शोधीत अंतिम अनुभूति है। लेकिन जब मन कामनाओंसे विक्षेपित नही होता तभी ध्यान साधना यशस्वी होती है।

परोपकारार्थ इदं शरीरम्। ईश चिंतनार्थ इदं मनः।
विवेकार्थ इदं बुध्दि। ब्रम्हज्ञानार्थ जीवनम् ।।

यह शरीर परोपकार करने के लिये है, मन [illegible] चिंतन करने के लिये है, बुध्दि अच्छे और बुरे का विचार करने के लिये है और जीवन ब्रम्हज्ञान कि प्राप्ति के लिये है। शाश्वत सुख और अखंड आनन्द प्राप्त करना यह मानवीय जीवन का एकमेव ध्येय है।

पशुमानव : जो मानव जन्मतः अपनी स्थूल प्रवृत्ति का भक्ष्य हैं, अपनी भावना व प्रेरणा का असहाय्यदास बना है, वह 'पशुमानव' है।

मनुष्य मानव : जो मानव अपनी सहज प्रवृत्ति को दिशा देकर उसे पूर्णतः विकसित करने में लगा रहता है उसे परिपक्व पुरुष या 'मनुष्य मानव' समझा जाता है।

देव मानव : जो मानव अपने जीवन में उत्क्रान्ति करता है। अन्तिम श्वास तक विकसित मानव का जीवन जीते हुये अपनी

आत्मा को प्रसन्न रखता है, वह 'देव मानव' है।

जप, ध्यान, स्वाध्याय तथा अन्य सभी आध्यात्मिक साधनाये व्यक्तितत्व की शुध्दिकरण के लिये है। मूल योग्यता प्राप्त करने के लिये भीतर सही भूमि तैयार होने के लिए उपासना है। व्यक्ति जब जीव दशा छोड़कर आत्म में मिलजाये वह उपासना हैं। वह व्यक्ति परमात्मा का नाम लेते हुआ परमात्म, सत् स्वरुप, नित्य आनन्द को प्राप्त होता है। इन सबसे परम तत्व साध्य होकर शाश्वत सुख वह अनंत आनन्द प्राप्त होता है, यही मानव जीवन ...।

स्वयं को जानने से ईश्वर को आप जान सकते है। स्वयं के सत्य स्वरुप का नित्य अनुसंधान करना, आत्मतत्व में मग्न रहकर जीवन जीना यह आत्मज्ञान की स्थिति ही भक्ति है। इस स्थिति में मैं शरीर नहीं, चैतन्य हूँ, यह भाव रहता है। इस शुध्द चैतन्य में विषय वस्तु नहीं रहती। यह शुध्द चैतन्य आत्मस्वरुप आप स्वयं है। इस बोध का सतत स्मरण रखे, तब अध्यात्म सधकर मन की शांति होगी व "मैं" और "तू" समाप्त होगा। मन और बुध्दि से मुक्त होने पर जीव ईश्वर में विलीन होता है, यह शुध्द ज्ञान आप स्वयं है।

जीवन में शांति प्राप्त करने के लिए वृत्तियाँ अन्तर्मुख करनी होती हैं। वृत्ति अन्तर्मुख होने से अध्यात्म का मार्ग शुरु होता है।

इसीलिये साधक को मानसिक और बौध्दिक गुणों की आवश्यकता होती है। इस उपासना से मन और बुध्दि शुध्द होते है और जीवन में अध्यात्मिक उत्क्रान्ति होती है। उपासना के ज्ञान के प्रकाश से जीवन में आनन्द एवं शांति निर्माण होती है। पूर्ण साक्षात्कारी / विकसित पुरुष स्वभावत: नि:स्वार्थ प्रेम लुटाता है, वह विश्व में शांति फैलाता है और विश्वधर्म का निर्माण होता है। इसी को उपनिषद "वसुधैव कुटुंबकम्" कहता है।

वट वृक्ष के चित्र का अर्थ :

इस वृक्ष का मूल अर्थ है - परमात्मा अविनाशी है। तथा इस वृक्ष के शाखा ब्रम्हा रुप से प्रकट होने वाले यज्ञादी कर्म तथा इस संसार में वृक्ष की रक्षा और वृध्दि करने वाले वेद पत्ते है।

इच्छा से उत्पन्न हुआ संसार अहंकार और अज्ञान के कारण दु:ख रुपी है। अहंकार का मूल कारण भूतकाल और भविष्यकाल की इच्छाओं में छिपा है। जब आपके भीतर निस्वार्थ प्रेम निर्मित होता है तभी वह अनंत प्रेम है।

इस संसार रुपी वृक्ष को जो पुरुष मूलसहित तत्व से जानता है, वस्तुत: वही वेद जाननेवाला है। स्वयं की चेतना का श्रवण, मनन, निजध्यासन, चिंतन करना और स्वयं को जानना ही वेद है।

अनुक्रमणिका

भूतशुद्धि-उपासना (नारायण उपनिषद) १
सदगुरु आरती ९
सकल समन्वय प्रसादान १४
मंत्र पुष्पांजलि १६
निर्वाणषट्कम १८
श्री पुरुषादिकाष्टक २१
श्री दत्तस्तवन स्तोतम २५
महिषासुरमर्दिनी २६
अन्नपूर्णा स्तोत ३१
लिंगाष्टक स्तोत ३४
ज्ञान यज्ञ - स्थितप्रज्ञ लक्षण ३७
भज गोविंदम् ४८
लक्ष्मीसुक्तम ६५
श्री सूक्तं ६७

अनुक्रमणिका

पुरुष सुक्तं ६९
आत्मचिंतन ७२
विविध मंत्र ७३
प्रात:स्मरण ७५
शांतिपाठ ७६
क्षमा प्रार्थना ७७
पी.डी.एल. परिचय ७९

भूतशुद्धि

परे पूर्णे चिदाकाशे निर्विकल्पे निरंजने।
सर्वभूतलयं दृष्ट्वा भूतशुद्धिः प्रजायते ।।१।।

अर्थ : आत्मस्वरुप परमेश्वर आपही सब के मूल आधार है। वेद आप का प्रतिपादन करता है। आकाश के समान असीम, सर्वव्यापी, निर्विकल्प मन और बुध्दि की कल्पना से परे जो सदैव आनन्द देने वाला है। वह चैतन्य जिससे प्राणियों की उत्पत्ति, शुध्दि होती है और उसी में सम्पूर्ण प्रकार के जीवों का लय होता है।

अहमेकं इदं सर्वं सचराचरमेव च।
इति ज्ञात्वा शरीरेऽस्मिन् प्राणधारणमुच्यते ।।२।।

अर्थ : जो सभी चराचर में और मुझमें भी व्याप्त है वह एक ही है। यह जानकर इस शरीर में प्राणों को धारण करता हूँ।

ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम्।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ।।३।।

अर्थ : ॐकार आत्मस्वरुप परमेश्वर मेरे पंचप्राणों अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान में समाया हो। मैं ज्योति स्वरुप हूँ। ऐसी ज्योति जो पापों से रहित, सत्व शुध्द है। इस भावना से अपने अहं भाव को विसर्जित करके अपने आत्मस्वरुप को पाता हूँ।

ॐ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिः संकल्पा मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा।।४।।

अर्थ : ॐकार आत्मस्वरुप परमेश्वर पंच ज्ञानेन्द्रियों अर्थात् वाणी, चक्षु, श्रवण, जिव्हा घ्राणशक्ति और छठी इन्द्रिय मन, बुध्दि के संकल्प द्वारा शुध्द हो रही हैं।

मैं ज्योति स्वरुप हूँ। ऐसी ज्योति जो पापों से रहित, सत्व शुध्द है। इस भावना से अपने अहं को विसर्जित करके अपने आत्म-स्वरुप को पाता हूँ।

ॐ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शुध्यन्ताम्।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ।।५।।

अर्थ : इस शरीर में स्थित चर्म, मांस, रक्त, मेंद, मज्जा, स्नायु सभी में शुध्दता हो। मैं ज्योति स्वरुप हूँ। जो पापों से रहित शुध्द सत्व है। इस भावना से अपने अहं को विसर्जित करके अपने [illegible] को पाता हूँ।

ॐ शब्दस्पर्शरुपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम्।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ।।६।।

अर्थ : शब्द, स्पर्श, रुप, रस और गंध इन पंच तन्मात्राओं में शुध्दता हो।

मैं ज्योति स्वरुप हूँ। ऐसी ज्योति जो पापों से रहित, सत्व शुध्द है। इस भावना से अपने अहं को विसर्जित करके अपने आत्म-स्वरुप को पाता हूँ।

ॐ पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशा मे शुध्यन्ताम्।
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ।।७।।

अर्थ : पृथ्वी, जल, आप, वायु और आकाश इन पंच तत्वों में शुध्दता हो। मैं ज्योति स्वरुप हूँ, जो पापों से रहित, शुध्द सत्व है। अतः पूर्णतः समर्पित होकर आत्मस्वरुप को पाता हूँ।

उपासना

आदौ ब्रह्मा मध्ये विष्णुः। अंते देवः सदाशिवः।
मूर्तित्रयस्वरूपाय। दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते।।१।।

अर्थ : उत्पत्ति, स्थिति और लय ऐसी तीनों शक्तियाँ जिस मूर्त स्वरुप में हैं ऐसे दत्त (स्थिति) को नमस्कार करता हूँ।

भोगालयाय भोगाय। योगयोग्याय धारिणे।
जितेन्द्रिय जितज्ञाय। दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते।।२।।

अर्थ : भोग करते हुये भी भोग में आसक्त न होनेवाले [illegible] योग्यताओं को धारण करने वाले, मन और बुध्दि के समन्वय से इन्द्रियों पर विजय पानेवाले ऐसे दत्त (स्थिति) को नमस्कार करता हूँ।

दिगम्बराय दिव्याय। दिव्यरूपधराय च।
सदोदितपरब्रह्म। दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते।।३।।

अर्थ : दिव्यता को धारण करता है। सदा ही परब्रम्ह में स्थित रहता है ऐसे दत्त (स्थिति) को नमस्कार करता हूँ।

अवधूत सदानन्द। परब्रह्मस्वरूपिणे।
विदेहदेहरूपाय। दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते।।४।।

अर्थ : जो शरीर, मन और बुध्दी के बन्धनों से मुक्त सदा परब्रम्ह से अवस्थित होकर आनन्द में रहता है वह विदेह अवधूत है। इस अवस्था में स्थित दत्त (स्थिति) को नमस्कार करता हूँ।

अवधूत चिंतन श्री गुरुदेव दत्त।

अर्थ : जो विदेह है। अविद्या और बन्धनोसे मुक्त है। उसे अवधुत कहते है। ऐसे साक्षात्कारी गुरुदेव उस अनंत आनन्द स्थिति में रहते है। गुरुदेव दत्त ब्रन्हस्वरुप स्थिति का चिंतन करता हूँ।

करन्यास - हृदयन्यास का महत्व

हर व्यक्ति अपने जीवन में मन की शांति के लिये पूजा, जप, साधना अपने विवेक, आन्तरिक प्रेरणा या संस्कारों से करने की चेष्टा करता है। करन्यास और हृदयन्यास विधि करने से सकारात्मक परिणाम आते है।

इन्सान की सेवा इन्सान बनके और भगवान की पूजा भगवान बनके करनी चाहिये। करन्यास और हृदयन्यास के माध्यम से शरीर में मन्त्र के द्वारा दिव्यत्व की स्थापना करते हैं।

करन्यास में अलग-अलग उंगलियों में मंत्र की दिव्य ऊर्जा की स्थापना होती है।

हृदयन्यास के द्वारा शरीर में अलग-अलग स्थानों पर मंत्र की दिव्य ऊर्जा की स्थापना होती हैं क्योंकि मंत्र दिव्य ऊर्जा के स्त्रोत होते हैं अतः हम शास्त्रोक्त विधि से भगवान के दिव्य स्वरुप को प्राप्त करते हैं।

करन्यास विधि :

ॐ ह्रां ध्रां हुं अंगुष्ठाभ्यां नमः

(इस मंत्र का उच्चारण करते हुये प्रथमा उंगली से अँगूठे के मूल भाग से अग्र भाग तक स्पर्श करें)।

ॐ तं रं तर्जनीभ्यां नमः

(इस मंत्र का उच्चारण करते हुये तर्जनी उंगली के मूल भाग से अग्र भाग तक अँगूठे के द्वारा स्पर्श करें।

ॐ त्रं क्षं मध्यमाभ्यां नमः

(इस मंत्र का उच्चारण करते हुये मध्यमा उंगली के मूल से लेकर अग्र भाग तक अँगूठे के द्वारा स्पर्श करें)

ॐ अं नं अनामिकाभ्यां नमः (इस मंत्र का उच्चारण करते हुये अनामिका उंगली के मूल से लेकर अग्र भाग को अंगूठे के द्वारा स्पर्श करें।)

ॐ वं थं कनिष्ठिकाभ्यां नमः (कनिष्ठिका उंगली के मूल से लेकर अग्रभाग को अँगुठे के द्वारा स्पर्श करे)।

ॐ ह्रां पिं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः (इस मंत्र का उच्चारण करते हुये दोनों हथेलियों के पृष्ठभाग को दूसरी हथेली के अग्र भाग से स्पर्श करें)

हृदयन्यास विधि -

ॐ द्रां ध्रां हुं हृदयाय नमः (इस मंत्र का उच्चारण करते हुये दाहिने हाथ से हृदय स्थान को स्पर्श करें)

ॐ तं रं शिरसे स्वाहा (इस मंत्र का उच्चारण करते हुये सिर के मध्य को स्पर्श करें)

ॐ त्रं क्षं शिखायैवषट् (इस मंत्र का उच्चारण करते हुये शिखास्थान को स्पर्श करें)

ॐ नं कवचाय हुं (इस मंत्र का उच्चारण करते हुये दोनों हाथ ऊपर की ओर उठायेंगे हथेलियाँ अपनी ओर खुली रहेंगी हाथों को नीचे लाकर बायें हाथ से दाहिने कंधे को और दायें से बायें कंधे को स्पर्श करें)

ॐ वं थं नेत्रत्रयाय वौषट् (इस मंत्र का उच्चारण करते हुये दायें हाथ की तर्जनी उंगली से दाहिनी आँख अनामिका उंगली से बायीं आँख तथा मध्यमा उंगली से आज्ञा चक्र का स्पर्श करें)

ॐ द्रां पिं अस्त्राय फट् (इस मंत्र का उच्चारण करते हुये दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा उंगली को दाहिने से बायें सिर के चारों ओर घुमाकर बायीं हथेली के अँगूठे के नीचे के भाग पर फट् करें या दो उंगली से ताली मारें)

ॐ आदिरूपाय विद्महे।

अनादिरुपाय धीमहि तन्नो दत्तः प्रचोदयात्।

दत्तात्रेय गायत्री

अर्थ : जिसका न आदि है और न ही अन्त है जो कि अनादि सनातन है इस स्थिति को जानने की हमें प्रेरणा दें,

ॐ ॐ ॐ दं बं तं दत्ताय नमः

ॐ ॐ ॐ सिद्धाय नमः

अर्थ : स्थूल, सूक्ष्म और कारण अर्थात् शरीर, मन और बुद्धि तथा अज्ञान के पार अवस्थित स्थिति को नमन करता हूँ जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति के पार तूर्यावस्था में अवस्थित सिध्द को नमन करता हूँ।

दिगंबरं त्रिगुणात्मकं, नारायणं निरंजनं, योगेश्वरं अनादिनाथं, सर्वव्यापियोगिनं, हंसकलेश्वरं चिन्मयं, ज्योतिरूपं निराधारं, सोऽहं ब्रह्म सनातनम्। घोररूपं महाघोरं, अष्टांगयोगसिद्धिसिद्धेश्वरम्। ॐ नमो भगवते दत्तात्रेयाय विष्णवे, गुरुपरमात्मने, वासुदेवाय नमोऽस्तु ते। ॐ नमो त्रयमूर्तये, रुद्राय, त्रैलोक्याधिपतये, जितेन्द्रियाय, सनातनाय, नमोऽस्तु ते।।

अर्थ : दसो दिशायें जिसके भीतर हैं, तीनों गुणों से युक्त ईश्वर करुणा व दया से युक्त, आत्मस्वरुप, समयकाल से, ब्रम्ह को जानने वाले, अनादि सर्वव्यापी, हंस के समान सूक्ष्म सद्विवेदन के द्वारा शाश्वत अनंत सत्य को जाननेवाला निराकार, ज्योति स्वरुप, नित्य नूतन ब्रम्ह मैं ही हूँ ऐसा जानने वाला। विराट

स्वरूप वाला, अष्टांग योग के द्वारा शाश्वत सुख एवं आनन्द को प्राप्त करने वाले सिध्दों के ईश्वर है।

ॐकार आत्मतत्व, ब्रम्हस्वरुप परम पुरुष भगवत है उस शुध्द अस्तित्व सद्गुरु विशाल करुण सागर, शाश्वत आनन्द स्वरुप को मेरा प्रणाम है।

ॐकार आत्मतत्व जो सदा नित्य है सभी योगी सिध्द उन्ही को समर्पित हैं उत्पत्ति स्थिति और लय तीनों शक्तिओं के स्वामी तीनों लोगों के स्वामी सभी इन्द्रियों के स्वामी जिनके कारण सारा विश्व चलता है वह नित्य नूतन सत् स्वरुप को प्रणाम करता हूँ।

। ॐ नमो महासिद्धाय स्वाहा: ।

अर्थ : आत्मस्वरुप को प्राप्त करने वाले महासिध्द, ब्रम्ह साक्षात्कारी को समर्पित होता हूँ। (इस मंत्र का जप वैखरीवाणी से १२ बार और पश्यन्ति वाणी से २४ बार करें।)

सद्गुरुदेव की जय, देव की जय।

सब संतन की जय।

नम: पार्वतीपतये हर हर महादेव।

(नामधुन और भजन)

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद बल्लभ दिगंबरा

सद्गुरुकी आरती

सच्चित् आनंदा, आत्मारामा सुखकंदा।।धृ।।

जयदेवा जय ब्रह्मस्वरूपा श्री सद्गुरुनाथा।

आरती ओवाळूनी तव चरणी ठेवितसे माथा।।धृ।।

अर्थ : जो शाश्वत, चित् शुध्द ज्ञान अनंत, असीम आनंद स्वरुप है। मन और बुध्दि से परे वह ब्रम्ह स्वरुप ही सद्गुरु है। ऐसे आत्म स्वरुप, साक्षात्कारी, सत्यतत्व, ब्रम्हस्वरुप को शत् शत् नमन करता हूँ।

चंद्रमंडलांतर्गत निर्मल ब्रह्मरंध्रभुवनी।

एकवीस स्वर्गावरती आसन साजे कुंजवनी।।१।।

अर्थ : वह ब्रम्हस्वरुप सद्गुरु निर्मल व अनंत जिनकी चेतना है, जो दिव्य ज्ञान से हमारे षड्विकारों को विसर्जित कर हमें शरीर, मन और बुध्दि से परे ले जाने का सामर्थ्य रखते हैं। आज्ञाचक्र के चन्द्रमण्डल के भीतर ब्रम्हरन्ध्र में उनका स्थान है। चेतना के विकास की इक्कीस अवस्थाओं से होकर मैं उस शाश्वत, नित्य आनन्द का अनुभव करता हूँ।

सहस्त्रदलपंकजी विराजित गुंफेमाझारी।

अतसि-कुसुम-समकांती झळके शुक्लांबरधारी।।२।।

अर्थ : शरीर, मन और बुध्दि की सांसारिक माया से परे, आज्ञा

चक्र के ऊपर ईश्वरीय क्षेत्र में सहस्रदल वाले कमलरुपी चक्र पर विराजित, शुध्द, सात्विक, आकाश के समान सर्वव्यापक परब्रम्ह में स्थित परमात्मास्वरुपी सद्गुरु जिनका मुख मण्डल खिले हुये पुष्प की तरह सदैव आल्हादित है जो कि असीम, नित्य आनंद देनेवाला है।

षट्चक्रांचे देव बंदिले तीर्थाटन झाले।
द्विदल पंढरपुरी सद्गुरु पाहुनि मन धाले।।३।।

[illegible] जीवात्मा को बन्धन से मुक्त करने वाली ज्ञात से अज्ञात की अद्भुत अन्तर्जगत यात्रा मूलाधार चक्र से सुषुम्ना मार्ग से षट्चक्र रुपी तीर्थों के देवताओं का दर्शन और वंदन कर आज्ञाचक्र के ईश्वरीय क्षेत्र में पहुँचकर ब्रम्हस्वरुप सद्गुरु के कमल के दलों के समान श्री चरणों को देखकर मेरा मन आनन्दित हो उनके स्वरुप के साथ एकरुप हुआ।

सद्रूपचिद्रूप आनंदात्मा सज्जन दिनबंधू।
करुणासागर पूर्ण उजागर तारक भवसिंधू।।४।।

अर्थ : सत् चित् आनन्द को प्राप्त आत्मतत्व से एकरुप होने पर दया, क्षमा, शांति, करुणा, परोपकार, स्वच्छता, निःस्वार्थ प्रेम आदि सद्गुणों के रुप में मानवता धर्म प्रकट हुआ जो संसाररुपी भवसागर से पार ले जाने वाला है।

प्राणापाने सोऽहं सूत्रे काया वाणी मने।
त्रिगुणताटी प्रसाद अर्पण केलासे सुमने।।५।।

अर्थ : सोऽहं के दिव्य अन्तर्नाद से युक्त अनवरत चलने वाली प्राण अपान क्रिया जो शब्द प्राणायाम है, उससे शरीर, मन, बुध्दि से परे सत्, रज और तम त्रिगुणों से मुक्त, अन्तरंग में अवस्थित शुध्द चैतन्य परब्रम्ह को श्रध्दा और विश्वास के सुमन अर्पित करता हूँ।

रत्नजडित सिंहासन लखलख रंगरंग भरिले।
चिन्मय मूर्ति ध्यान गुरुंचे सोज्ज्वल मनी धरिले।।६।।

अर्थ : विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितीक्षा, श्रध्दा और समाधान) मुमुक्ष के सद्गुण रुपी रत्नों से आभूषित श्रेष्ठता के सर्वोच्च सिंहासन पर विराजित जिनका आभा मण्डल लाखों रंगों से प्रकाशमान हैं, ऐसे असीम, आनन्द की मूर्ति, ब्रम्हस्वरुप सद्गुरु का ध्यान अपने मन में धारण करता हूँ।

श्रवण पठण या प्रदक्षिणेने गुरुवरदेश्वरीला।
निजध्यासिता ज्ञानदीपाचा प्रकाश संचरला।।७।।

अर्थ : ऐसे परब्रम्ह स्वरुप, सद्गुरु के दिव्य ज्ञान का सतत श्रवण, पठन, चिन्तन, मनन और ध्यान-धारणा से मेरे भीतर

[illegible] विचारों के दिव्य ज्ञान का प्रकाश संचारित हुआ। जिसमें अविरत जागृति से सर्वव्यापक, प्रकाशमान स्वस्वरुप का आत्मज्ञान मुझे प्राप्त हुआ।

अनुहत, वेणू, शंख, झांजरी, घागरिया बाजे।
मृदंग, वीणा, टाळ, नगारा गगनांबरी गाजे।।८।।

अर्थ : सद्गुरु की कृपा से प्राप्त आत्मज्ञान के प्रकाश के संचार से मेरे भीतर उत्सव और आनन्द का निर्माण हुआ। वेणु, शंख, झांजरी, घागरिया, मृदंग, वीणा, नगाड़ा आदि के गगन भेदी अनहदनाद के दिव्य स्वरों से सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड गुंजायमान हुआ।

गीतामंत्र पुष्पांजली बाहू गुरुपदअरविंदा।
प्रसादतीर्था सिंधू सेवुनी पावे आनंदा।।९।।

अर्थ : आत्मतत्व पर आधारित भगवद्गीता पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करती है। जिसका आधार आत्मतत्व या सत्यतत्व है इस सत्य तत्व को जीवन में अनुभव करने के बाद पुष्पांजली के रुप में यह ज्ञान संसार को बाटने वाला गुरु संसार रुपी किचड में रहते हुये भी कमल के समान उसमें लिप्त नहीं होता वह कर्ता होकर भी अकर्ता बनकर रहता है। गुरु के द्वारा प्राप्त यह ज्ञान का प्रसाद तीर्थ के जल के समान मन को पवित्र एवं शुध्द करता

है। इस ज्ञान और अनुभव के द्वारा साधक को जीवन में अनंत, शाश्वत आनन्द और शांति प्राप्त होती है।

सच्चित् आनंदा आत्मारामा सुखकंदा।
जयदेवा जय ब्रह्मस्वरुपा श्री सद्गुरुनाथा।
आरती ओवाळूनी तव चरणी ठेवितसे माथा।।१०।।

अर्थ : जो शाश्वत, चित्, शुध्दज्ञान, अनंत, असीम, आनन्द स्वरुप है। मन और बुध्दि से परे वह ब्रम्हस्वरुप ही सद्गुरु है। ऐसे आत्मसाक्षात्कारी, सत्यतत्व ब्रम्ह स्वरुप को समर्पित हूँ।

अपने आत्मस्वरुप को प्राप्त करने की इसी जीवन पध्दती को 'हिन्द' कहते हैं। मनुष्य के भीतर शाश्वत, अनंत आनन्द की स्थिति ही 'हिन्द राष्ट्र' है। यही वेदान्त का उच्चतम ज्ञान है।

सकल समन्वय पसायदान

आतां विश्वात्मकें देवें। येणें वाग्यज्ञें तोषावें।
तोषोनि मज द्यावें। पसायदान हें।।१।।
जे खळांची व्यंकटी सांडो। तयां सत्कर्मी रती वाढो।
भूतां परस्परें पडो। मैत्र जीवाचें।।२।।
दुरितांचें तिमिर जावो। विश्व स्वधर्मसूर्ये पाहो।
जे जें वांछील तो तें लाहो। प्राणिजात।।३।।
वर्षत सकळमंगळीं। ईश्वरनिष्ठांची मांदियाळी।
अनवरत भूमंडळीं। भेटतु भूतां।।४।।
चलां कल्पतरूंचे अरव। चेतनाचिंतामणीचे गांव।
बोलते जे अर्णव। पीयुषाचे।।५।।
चंद्रमे जे अलांछन। मार्तंड जे तापहीन।
ते सर्वांही सदा सज्जन। सोयरे होतु।।६।।
किंबहुना सर्वसुखीं। पूर्ण होऊनि तिहीं लोकीं।
भजिजो आदिपुरुषीं। अखंडित।।७।। .. ज्ञा. *

अर्थ : वह विश्वात्मा वह परमेश्वर इस वाग्यज्ञसे संतुष्ट होकर मुझे सिर्फ इतना ही प्रसाद प्रदान करें की खलों कि कुटीलता

छुट जायें।

उनके अन्तःकरण में सत्कर्मों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो तथा प्राणियों में हार्दिक मैत्री हो। पाप रुपी अंधकार का विनाश हो तथा आत्मज्ञानरुपी प्रकाश से सारा संसार उज्ज्वल हो और तब जो प्राणी जिस चीज की कामना करें वह उसे प्राप्त हों। समस्त मंगलो की वृष्टि करने वाले जो संत जनों का जो समुदाय है, उस का इस पृथ्वी के समस्त जीवों के साथ अखंड मिलन हो। ये संतजन मानो चलते फिरते कल्पतरु के अंकुर है। इनको चैतन्य चिंतामणी का ग्राम अथवा अमृत का बोलता हुआ सिन्ध ही समझना चाहिए। यह संतजन मानो निष्कलंक चंद्रमा अथवा ताप शुन्य सूर्य है तथा समस्त लोगों के सदा के सम्बंधी है। आशय यह है की तीनो लोक अद्वैत सुख से पूर्ण होकर अखण्ड रुप से उस आदी पुरुष के भजन में तल्लीन रहें।

मंत्र पुष्पांजली

ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविंकवीनामुपमश्रवस्तम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नुतिभिःसीद सादनम्।।
ॐ नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः।।
ॐ ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान्।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।।
ॐ कथा ते अग्ने शचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः।
उभे यत् तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः।।
ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वसाध्याः सन्ति देवाः।।
ॐ राजाधिराजायप्रसह्य साहिने नमोवयं वैश्रवणायकुर्महे।
स मे कामान्कामकामायमह्यंम् कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु।।
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः।
ॐ स्वस्ति, साम्राज्यं, भौज्यं, स्वाराज्यं, वैराज्यं, पारमेष्ठ्यं,
राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समंतपर्याईस्यात्
सार्वभौमः सर्वायुषआन्तादापरार्धात् ।

पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराळिति
तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याऽवसन्गृहे।
आविक्षितस्यकामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासदइति।
ॐ एकदन्ताय विद्महे। वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।
ॐ तत्पुरुषाय विद्महे। महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।
ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे। विष्णुपत्न्यै च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।
ॐ दत्तात्रयाय विद्महे। योगिश्वराय धीमहि। तन्नो दत्तः प्रचोदयात्।
ॐ पूर्णब्रह्माय विद्महे। सच्चिदानन्दाय धीमहि।
तन्नो सद्गुरुः प्रचोदयात्।
नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर।
ॐभूर्भुवः स्वः ॐनमो भगवते दत्तात्रेयाय
मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि

निर्वाणषटकम्

मनोबुद्धियहंकारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूर्मिर्न तेजो न वायुः
चिदानन्दरुपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।१।।

मैं मन नहीं हूँ और न मैं बुद्धि। न अहंकार या चित्त हूँ। मैं न श्रोत्र हूँ और न जिह्वा, नासिका या नेत्र नहीं हूँ। मैं आकाश नहीं हूँ, और वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी भी नहीं हूँ। मैं चिदानन्दरूप हूँ। मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायुः
न वा सप्तधातुर्न वा पंच्चकोषाः।।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायू,
चिदानन्दरुपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।२।।

मैं प्राण संज्ञा नहीं हूँ, मै पंचवायु नहीं हूँ। मैं सप्तधातु नहीं और न पंचकोष हूँ। मैं हाथ, पाँव, वाणी, गुदा, या जननेन्द्रिय भी नहीं हूँ। मैं चिदानंदरूप हूँ। मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ, मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षः
चिदानन्दरुपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।३।।

मुझमे न द्वेष है, न राग, न लोभ, न मोह है, न मद है, न मत्सर है। मुझमें धर्म नही है; मुझमें अर्थ भी नहीं है। न इच्छा है, न मोक्ष है। मैं चिदानन्द रूप हूँ। मैं शिव हूँ, मै शिव हूँ।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखम्
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भौज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरुपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।४।।

मैं न पुण्य हूँ, न पाप हूँ। न सुख हूँ, न दुख हूँ। मैं मन्त्र नहीं हूँ, मैं तीर्थ नहीं हूँ। मैं वेद नहीं हूँ, यज्ञ भी नहीं हूँ। मैं न भोजन हूँ, न भोजन का धर्म हूँ और न भोजन करनेवाला हूँ। मैं चिदानन्दरूप हूँ। मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

नमृत्यूर्नशङ्का न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः
चिदानन्दरुपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।५।।

मेरे लिए न मृत्यु है, न शंका है, न जातिभेद है न माता-पिता है। मेरे लिए जन्म नहीं हैं। मैं बन्धु नहीं हूँ, मित्र नहीं हूँ, गुरु नहीं हूँ, शिष्य नहीं हूँ। मैं चिदानन्द रूप हूँ, मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपः
विभूर्व्याप्त सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्धः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।६।।

मैं विचारहीन हूँ, आकारहीन हूँ। सर्व शक्तिमान हूँ। सर्वत्र हूँ। सभी इन्द्रियों के परे, सबसे अलिप्त हूँ। मेरे लिए मुक्ति भी कुछ नहीं हैं। मैं चिदानन्दरूप हूँ, मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

श्रीगुरुपादुकाष्टक

ज्या संगतीनेच विराग झाला।
मनोदरीचा जडभास गेला।
साक्षात-परमात्मा मज भेटवीला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।१।।

अर्थ : जिनके सत्संग से मन में वैराग्य का भाव जागृत हो मन शुध्द हो गया और मन में व्याप्त सारे द्वंद शांत हो मन हलका हो गया। ऐसे निर्मल गुरु चरणों को मैं कैसे भुल सकता हूँ।

सद्योगपंथे घरी आणियेले।
अंगेच माते परब्रह्म केले।
प्रचंड तो बोधरवि उदेला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।२।।

अर्थ : जिनके सूर्यरुपी तेज पूर्ण दिव्य ज्ञान के प्रकाश से सत्कर्म करते हुये इस शरीररुपी घर में परब्रह्म प्रकट हुआ। ऐसे श्रेष्ठ, तेजस्वी गुरु चरणों को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

चराचरी व्यापकता जयाची।
अखंड भेटी मजला तयाची।
परंपदी संगम पूर्ण झाला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।३।।

अर्थ : जिनके चराचर में व्याप्त होने के कारण मैं श्री भगवान से कुशल, किसी भी समय मिल सकता हूँ। देह और मन से उनके दर्शन कर असीम आनन्द प्राप्त कर सकता हूँ। ऐसे सर्वव्यापी गुरु के चरणों को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

जो सर्वदा गुप्त जनांत वागे।
प्रसन्न भक्ता निजबोध सांगे।
सद्भक्तिभावाकरिता भुकेला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।४।।

अर्थ : जो अदृश्य रुप में लोगों के साथ संचार करता है। जो भक्त की निःस्वार्थ भक्ती से प्रसन्न हो उसे आत्मज्ञान प्रदान करते है। ऐसे भक्त वात्सल गुरु के चरणों को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

अनंत माझे अपराध कोटी।
नामी मनी, घालुनि सर्व पोटी।
प्रबोधिता त्या श्रम फार झाला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला ।।५।।

अर्थ : जो मेरे द्वारा हुये पापों और गुनाहों को अनदेखा करते हुये मुझे सन्मार्ग पर लाने के लिये अनेक कष्टों को सहजता से सहते हैं। ऐसे पाप नाशक गुरु के श्री चरणों को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

काही मला सेवनही न झाले।
तथापि तेणे मज उद्धरीले।
आता तरी अर्पिण प्राण त्याला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।६।।

अर्थ : उनके द्वारा दिये दिव्यज्ञान को ग्रहण करने की बौध्दीक क्षमता न होने पर भी वे सतत् मेरा उध्दार करते हैं। ऐसे विराट विशाल गुरु के भी चरणों को कैसे भुल सकता हूँ।

माझा अहंभाव बसे शरीरी।
तथापि तो सद्गुरु अंगिकारी।
नाही मनीं अल्प विकार ज्याला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।७।।

अर्थ : जो मेरे शरीर व मन में व्याप्त दोष, दुगुर्ण, अहंकार को स्विकार करते है। जिससे मेरे मन में छोटासा भी दुष्ट भाव जागृत नही होता। ऐसे करुणावान, दुखहर्ता गुरु के श्री चरणो को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

आता कसा मी उपकार फेडू ।
हा देह ओवाळुनि दूर सांडू।
म्या एकभावे प्रणिपात केला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।८।।

अर्थ : जिन्हों ने मुझ पर कृपा अनंत कर उपकार किये है। अपना सर्वस्व न्यौछावर करके भी उन उपकारों का ऋण कम नही किया जा सकता। ऐसे परोपकारी गुरु के श्री चरणों को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

जया वानिता-वानिता वेदवाणी।
म्हणे "नेंति नेंति" तिला जे दुरुनी।
नव्हे अंत ना पार ज्याच्या रुपाला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।९।।

अर्थ : जिनके गुणों की महिमा का वर्णन करते करते चारों वेद थक जाते है। ऐसे श्रेष्ठ गुणधारी गुरु के श्री चरणों को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

जो साधुच्या अंकित जीव झाला।
त्याचा असे भार निरंजनाला।
नारायणाचा भ्रम दूर केला।
विसरु कसा मी गुरुपादुकाला।।१०।।

अर्थ : ऐसे सर्व व्यापी गुरु साधू अर्थात अच्छे लोगों के उद्धार की जिम्मेदारी उठाते हैं। ऐसे कर्मठ और परम उदार गुरु के श्री चरणों को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

श्री दत्तस्तवन स्तोत्रम्

भूतप्रेतपिशाचाद्या यस्य स्मरणमात्रतः।
दूरादेव पलायते दत्तात्रेयं नमामि तम्।।१।।
यन्नामस्मरणादेन्यं पापं तापश्च नश्यति।
भीतिग्रहार्तिदुःस्वप्नं दत्तात्रेयं नमामि तम्।।२।।
दद्रुस्फोटककुष्ठादि महामारी विषूचिका।
नश्यन्त्यन्येऽपि रोगाश्च दत्तात्रेयं नमामि तम्।।३।।
संगजा देशकालोत्था अपि सांक्रमिका गदाः।
शाम्यंति यत्स्मरणतो दत्तात्रेयं नमामि तम्।।४।।
सर्पवृश्चिकदष्टानां विषार्तानां शरीरिणाम्।
यन्नामशांतिदं शीघ्रं दत्तात्रेयं नमामि तम्।।५।।
त्रिविधोत्पातशमनं विविधारिष्टनाशनम्।
यन्नाम क्रूरभीतिघ्नं दत्तात्रेयं नमामि तम्।।६।।
वैयादिकृतमंत्रादि प्रयोगा यस्य कीर्तनात्।
नश्यंति देवबाधाश्च दत्तात्रेयं नमामि तम्।।७।।
यच्छिष्यस्मरणात्तस्याद्यो गतनष्टादि लभ्यते।
य ईशः सर्वतत्त्राता दत्तात्रेयं नमामि तम्।।८।।
जयलाभयशः कामदातुर्दत्तस्य यः स्तवम्।
भोगमोक्षप्रदस्तोमं पठेदत्तप्रियो भवेत्।।९।।
ॐ नमो भगवते दत्तात्रेयाय।

महिषासुरमर्दिनी स्तोत्रम्

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनि विश्व-विनोदिनि नन्दनुते
गिरिवर-विन्ध्य-शिरोऽधि-निवासिनि विष्णु-विलासिनि जिष्णुनुते।
भगवति हे शितिकण्ठकुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूरिकृते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१।।

सुरवर-वर्षिणि दुर्धर-धर्षिणि दुर्मुख-मर्षिणि हर्षरते
त्रिभुवनपोषिणि शङ्करतोषिणि कल्मष-मोषिणि घोषरते।
दनुजनिरोषिणि दितिसुतरोषिणि दुर्मदशोषिणि सिन्धुसुते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।२।।

अयि जगदम्ब मदम्ब कदम्बवन-प्रियवासिनि हासरते
शिखरि-शिरोमणि-तुङ्गहिमालय-शृङ्गनिजालय-मध्यगते।
मधुमधुरे मधु-कैटभ-गञ्जिनि कैटभ-भञ्जिनि रासरते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।३।।

अयि शतखण्ड-विखण्डित-रुण्ड-वितुण्डित-शुण्ड-गजाधिपते
रिपु-गज-गण्ड-विदारण-चण्डपराक्रम-शौण्ड-मृगाधिपते।
निज-भुजदण्ड-निपातित-चण्ड-निपातित-मुण्ड-भटाधिपते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।४।।

अयि रणदुर्मद-शत्रु-वधोदित-दुर्धर-निर्जर-शक्ति-भृते
चतुर-विचार-धुरीण-महाशय-दूत-कृत-प्रमथाधिपते।
दुरित-दुरीह-दुराशय-दुर्मति-दानव-दूत-कृतान्तमते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।५।।

अयि निजहुंकृतिमात्र-निराकृत-धूम्रविलोचन-धूम्रशते
समर-विशोषित-शोणितबीज-समुद्भवशोणित-बीज-लते।
शिव-शिव-शुम्भनिशुम्भमहाहव-तर्पित-भूतपिशाचपते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।६।।

धनुरनुसङ्गरण-क्षण-सङ्ग-परिस्फुरदङ्ग-नटत्कटके
कनक-पिशङ्ग-पृषत्क-निषङ्ग-रसद्भट-शृङ्ग-हताबटुके।
कृत-चतुरङ्ग-बलक्षित-रङ्ग-घटद्-बहुरङ्ग-रटद्-बटुके
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।७।।

अयि शरणागत-वैरिवधू-वरवीरवराभय-दायिकरे
त्रिभुवनमस्तकशूल-विरोधि-शिरोधि-कृताऽमल-शूलकरे।
दुमिदुमितामरदुन्दुभि-नाद-मुखरीकृत-दिङ्निकरे
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।८।।

सुरललना-ततथेयि-तथेयि-कृताभिनयोदर-नृत्य-रते
कृत-कुकुथ:कुकुथो-गडदादिकताल-कुतूहल-गान-रते।

धुधुकुट-धुक्कुट-धिन्धिमित-ध्वनि-धीर-मृदङ्ग-निनाद-रते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१।।
जय जय जप्यजये जय-शब्द-परस्तुति-तत्पर-विश्वनुते
झणझण-झिञ्झिमि-झिङ्कृत-नूपुर-शिञ्जित-मोहितभूतपते।
नटित-नटार्ध-नटीनट-नायक-नाटकनाटित-नाट्यरते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१०।।
अयि सुमनः सुमनः सुमनः सुमनोहर-कान्तियुते
श्रितरजनीरज--नीरज-नीरजनी-रजनीकर-वक्त्रयुते।
सुनयनविभ्रम-रभ्र-मर-भ्रमर-भ्रम-रभ्रमराधिपते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।११।।
महित-महाहव-मल्लमतल्लिक-मल्लित-रल्लक-मल्ल-रते
विरचितवल्लिक-पल्लिक-मल्लिक-झिल्लिक-भिल्लिक-वर्गवृते।
सित-कृतफुल्ल-समुल्लसितऽरुण-तल्लज-पल्लव-सल्ललिते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१२।।
अविरल-गण्डगलन्-मद-मेदुर-मत्त-मतङ्गजराज-पते
त्रिभुवन-भूषणभूत-कलानिधिरूप-पयोनिधिराजसुते।
अयि सुदतीजन-लालस-मानस-मोहन-मन्मथराज-सुते
जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१३।।

कमलदलामल-कोमल-कान्ति-कलाकलिताऽमल-भाललते
सकलविलासकला-निलयक्रम-केलिचलत्-कलहंसकुले।
अलिकुलसङ्कुल-कुवलयमण्डल-मौलिमिलद्बकुलालिकुले
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१४।।
कर-मुरली-रव-वीजित-कूजित-लज्जित-कोकिल-मञ्जुरुते
मिलित-मिलिन्द-मनोहर-गुञ्जित-रञ्जित-शैलनिकुञ्ज-गते।
निजगुणभूत-महाशबरीगण-सद्गुण-संभृत-केलितते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१५।।
कटितट-पीत-दुकूल-विचित्र-मयूख-तिरस्कृत-चन्द्ररुचे
प्रणतसुरासुर-मौलिमणिस्फुरद्-अंशुलसन्-नखचन्द्ररुचे।
जित-कनकाचलमौलि-मदोर्जित-निर्जरकुञ्जर-कुम्भ-कुचे
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१६।।
विजित सहस्रकरैक-सहस्रकरैक-सहस्रकरैकनुते
कृत-सुरतारक-सङ्गर-तारक सङ्गर-तारकसूनु-सुते।
सुरथ-समाधि-समान-समाधि-समाधिसमाधि-सुजात-रते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१७।।

पदकमलं करुणानिलये वरिवस्यति योऽनुदिनं स शिवे
अयि कमले कमलानिलये कमलानिलयः स कथं न भवेत्।
तव पदमेव परम्पदमित्यनुशीलयतो मम किं न शिवे
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१८।।
कनकलसत्कल-सिन्धुजलैरनुषिञ्चति ते गुणरङ्गभुवं
भजति स किं न शचीकुचकुम्भ-तटीपरिरम्भसुखानुभवम्।
तव चरणं शरणं करवाणि नतामरवाणि निवासि शिवं
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।१९।।
तव विमलेऽन्दुकुलं वदनेन्दुमलं सकलं ननु कूलयते
किमु पुरुहूतपुरीन्दुमुखी-सुमुखीभिरसौ विमुखीक्रियते।
मम तु मतं शिवनामधने भवतीकृपया किमुत क्रियते
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।२०।।
अयि मयि दीनदयालुतया करुणापरया भवितव्यमुमे
अयि जगतो जननी कृपयासि यथासि तथानुमितासि रमे।
यदुचितमत्र भवत्युररी कुरुतादुरुतापमतापकुरु मे
जय जय हे महिषासुर-मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।।२१।।

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

सिन्दूरा-ऽरुण-विग्रहां त्रिनयनां माणिक्य-मौलिस्फुरत्
तारानायक-शेखरां स्मितमुखीमापीन-वक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्ण-रत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थ-रक्तचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ।।
नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपापनिकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।१।।
नानारत्नविचित्र-भूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोज कुम्भान्तरी ।
काश्मीरागरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।२।।
योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मैक्यनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी ।
सर्वैश्वर्यकारी तपःफलकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।३।।

कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी ह्युमा शाङ्करी
कौमारी निगमार्थ-गोचरकरी ह्रीङ्कार-बीजाक्षरी ।
मोक्षद्वारकवाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।४।।
दृश्याऽदृश्य-विभूति-वाहनकरी ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरी
लीला-नाटक-सूत्रखेलनकरी विज्ञान-दीपाङ्कुरी ।
श्रीविश्वेशमनः-प्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।५।।
उर्वी-सर्वजनेश्वरी जयकरी माताकृपासागरी
वेणीनील-समान-कुन्तलहरी नित्यान्न-दानेश्वरी ।
साक्षान्मोक्षकरी सदाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।६।।
आदिक्षान्तसमस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरा त्रिपुरेश्वरी त्रिनयनी विशेश्वरी शर्वरी ।
स्वर्गद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।७।।
देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामस्वादुपयोधर प्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी ।

भक्ताभीष्टकरी सदाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।८।।
चन्द्रार्कानल-कोटिकोटि-सदृशां चन्द्रांशु-बिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्नि-समान-कुन्तलधरी चन्द्रार्क-वर्णेश्वरी ।
माला-पुस्तक-पाशसाङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।९।।
क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
सर्वानन्दकरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी ।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी ।
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ।।१०।।
अन्नपूर्णे सदा-पूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे।।
ज्ञान-वैराग्य-सिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ।।११।।
माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ।।१२।।

मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं
नमो भगवती माहेश्वरी अन्नपूर्णायै नमः।।

लिंङ्गाष्टकम् स्त्रोत्रम्

ब्रह्म मुरारी-सुरार्चित लिंङ्गम्। निर्मलभासित-शोभित लिंङ्गम्।
जन्मदुःख-विनाशन लिंङ्गम्। तत् प्रणमामि सदाशिवलिंङ्गम् ।।१।।

मैं उस सदाशिवलिंग को प्रणाम करता हूँ, जो ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देवों द्वारा पूजित हैं, जिसकी अर्चना शुद्ध एवं पवित्र शब्दों में होती है तथा जो जन्म मरण के चक्र को नष्ट करता है।

देवमुनि-प्रवरार्चित-लिंङ्गम्। कामदहन करुणाकर-लिंङ्गम्।
रावण-दर्प-विनाशन-लिंङ्गम्।
तत् प्रणमामि सदाशिवलिंङ्गम् ।।२।।

मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ, जिसकी देवता और ऋषि मुनि पूजा करते हैं तथा वह कामनाओं तथा वासनाओं का दहन करने वाला, अनन्त करुणावान है तथा रावण का अहंकार नष्ट करने वाला है।

सर्वसुगन्धि सुलेपित लिंङ्गम्। बुद्धिविवर्धन-कारण लिंङ्गम्।
सिद्ध-सुरासुर-वन्दित लिंङ्गम्
तत् प्रणमामि सदाशिवलिंङ्गम् ।।३।।

मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ, जो सभी सुगंधित एवं पवित्र द्रव्यों से लेपित है, जो प्रकाशरूप बुद्धि को तथा विचार

शक्ति को बढ़ाता है, जो सर्वजगत का कारण रुप है, जिसकी सिद्ध, सुर तथा असुर भी उपासना करते है।

कनक-महामणि-भूषित लिंङ्गम्। फणिपति-वेष्टित-शोभित लिंङ्गम्।
दक्ष-सुयज्ञ-विनाशन लिंङ्गम् ।
तत् प्रणमामि सदाशिवलिंङ्गम् ।।४।।

मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ, जो विविध सुन्दर आभूषणों से सजा हुआ है, जो विभिन्न रत्नो से सज्जित तथा गले में नाग का हार (माला) सजाये है, जिसने दक्ष के यज्ञ का विनाश किया।

कुङ्कुम-चन्दन-लेपित-लिंङ्गम्। पंङ्कज-हार-सुशोभित-लिंङ्गम्।
सञ्चित-पाप-विनाशन-लिंङ्गम् ।
तत् प्रणमामि सदाशिवलिंङ्गम् ।।५।।

मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ जिस पर कुमकुम और चंदन का लेप है जो कमल पुष्प के हार से सुशोभित हो रहा है, जो सभी संचित पापों का नाश करने वाला है।

देवगणार्चित सेवित-लिंङ्गम् । भावभक्तिभिरेव च लिंङ्गम्।
दिनकरकोटि प्रभाकर लिंङ्गम् ।
तत् प्रणमामि सदाशिवलिंङ्गम् ।।६।।

मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ जिसकी देवगणों द्वारा शुद्ध भाव और मग्न भक्ति द्वारा सेवा और अर्चना की जाती है, जो दिन के करोड़ों सूर्यों के समान सेवा प्रकाश से भरा हुआ है, और अतुलनीय आभायुक्त है।

अष्टदलो-परिवेष्टित-लिंङ्गम्। सर्व-समुद्भव-कारण-लिंङ्गम्।
अष्ट-दरिद्र-विनाशन-लिंङ्गम्।
तत् प्रणमामि सदाशिव-लिंङ्गम् ।।७।।

मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ जो अष्टदल कमल पर विराजमान हैं, जो इस समस्त सृष्टि के उद्गम के मूल तथा आदि कारण हैं, जो समस्त प्रकार की दरिद्रताओं और कष्टों के विनाशक हैं।

सुरगुरु सुरबर पूजित लिंङ्गम्। सुरवन पुष्प सदार्चित लिंङ्गम्।
परात्परं परमात्मक-लिंङ्गम्
तत् प्रणमामि सदाशिवलिंङ्गम् ।।८।।

मैं उस सदाशिव लिंग को प्रणाम करता हूँ, जो समस्त देवताओं और उनके गुरु (बृहस्पति) द्वारा पूजित है, दिव्यतम् पुष्पों से सुन्दर सज्जित है तथा जो परभौतिक परमचैतन्य परमात्मा है।

।। इति श्री लिंगाष्टकस्तोत्र सम्पूर्णम् ।।

ज्ञान यज्ञ

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।५४।।भ.गी.

शब्दार्थ : स्थित प्रज्ञस्य - स्थिर बुध्दि वाला, का - क्या, भाषा - पहचान, समाधिस्थस्य - परमचेतना में उपस्थित, केशव - हे केशव, स्थितधी - स्थिर बुध्दिवाला, किम - कैसे, प्रभाषेत - बोलता, किम् - कैसे, आसति - बैठता, व्रजेत - चलता, किम - कैस

भावार्थ : अर्जुन बोले - हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त स्थिर बुद्धि वाले पुरुष के क्या लक्षण हैं? वह कैसे बोलता है अर्थात् कर्मेन्द्रियों द्वारा अपने को कैसे प्रकट करता हैं? वह कैसे बैठता है अर्थात् उसकी आन्तरिक प्रकृति कैसी होती हैं? वह कैसे चलता है अर्थात् संसार के साथ कैसे व्यवहार करता है? उसकी पहचान क्या है मुझे बतायें।

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।।

शब्दार्थ : प्रजहाति - सम्पूर्ण त्याग, यदा - जब, कामान् -

कामान्, सर्वान् - समस्त, पार्थ - हे पार्थ (अर्जुन), मनोगतान् - मन की, आत्मनि - आत्मा में, एव - ही, आत्मना - आत्मा से, तुष्टः - संतुष्ट, स्थितप्रज्ञः - स्थिर बुद्धि वाला, तदा - तब (उसे ही) उच्यते - कहते हैं।

भावार्थ : श्री भगवान बोले - हे अर्जुन जब कोई व्यक्ति मन की इच्छाओं का त्याग कर। आत्मा में स्थित रहकर आत्म संतुष्ट होता है उसे ही स्थित प्रज्ञ कहते हैं।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।५६।।

शब्दार्थ : दुःखेषु - दुःख में, अनुद्विग्नमना - उद्विग्न नहीं होता, सुखेषु - सुख में, विगतस्पृहाः - उत्तेजित नहीं, वीतरागभय क्रोधः - इच्छा, भय, क्रोध से मुक्त, स्थितधीः - स्थिर बुद्धिवाला, मुनि - साधु, उच्यते - कहते हैं।

भावार्थ : जिसका मन न दुःख में उद्वेलित होता है और न सुख में उत्तेजित होता है। जो सभी इच्छाओं, भय और क्रोध से मुक्त है, उसे ही स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५७।।

शब्दार्थ : यः जो, सर्वत्र - सभी जगह, अनभिस्नेहः - अनासक्त,

तत् - जिसकी, तत् - जो, प्राप्य - मिलने पर, शुभम् - भलाई, अशुभम् - बुराई, न - नहीं, अभिनन्दित - प्रसन्न, न - नहीं, द्वेष्टि - घृणा, तस्य - उसकी, प्रज्ञा - बुध्दि प्रतिष्ठिता-स्थिर है

भावार्थ : जो व्यक्ति आसक्ति से रहित होकर सर्वत्र सभी के साथ समान रहता। जो भलाई मिलने पर प्रसन्नता और बुराई होने पर घृणा का भाव नहीं रखता उसकी बुध्दि को स्थिर समझना चाहिये।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५८।।

शब्दार्थ : यदा - जब, संहरते - समेटना, च - और, असम् - यही, कूर्मः - कछुआ, अङ्गानि - अंगों को, इव - जैसे, सर्वशः सभी ओर से, इन्द्रियाणी - इन्द्रियों को, इन्द्रियार्थेभ्यः - विषय वस्तु, तस्य - उसकी, प्रज्ञा - बुध्दि, प्रतिष्ठिता - स्थिर है

भावार्थ : जैसे कछुआ अपने अंगों को सब ओर से समेट लेता है, उसी प्रकार स्थिर बुध्दि वाला व्यक्ति इन्द्रियों को सुख देनेवाली विषय वस्तु से अपनी इन्द्रियों को हटा लेता हैं। अर्थात् इन्द्रियों को अर्न्तमुख कर लेता है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।५९।।

शब्दार्थ : विषया - विषयवस्तु, विनिवर्तन्ते - हटालेना, निराहारस्य - त्यागी, देहिनः - मनुष्य के, रसवर्जम् - सुख से नहीं, रसः - रस, सुख, अपि - भी, अस्य - उसका, परम् - परमतत्व, दृष्टवा - देखकर, निवर्तते - छूट जाता है।

भावार्थ : विषयों से इन्द्रियों को हटा लेने पर भी उस विषय से मिलने वाले रस या सुख से निवृत्ति नहीं होती जब उस परम तत्व से साक्षात्कार होता है तब वह रस भी छूट जाता है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।६०।।

शब्दार्थ : यततः - प्रयास से, हि - वास्तव में, अपि - भी, कौन्तेय - कुन्तीपुत्र (अर्जुन) पुरुषस्य - मनुष्य का, विपश्चितः- बुध्दिमान, इन्द्रियाणि - इन्द्रियाँ, प्रमाथीनि - विचलित, हरन्ति - हर लेना, प्रसभम् - बलपूर्वक, मनः - मन

भावार्थ : हे कुन्ती पुत्र! बुध्दिमान मनुष्य भी इन्द्रियों के जाल में फस जाता है। इन्द्रियाँ बुध्दिमान मनुष्य के मन को भी इन्द्रिय गत विषय वस्तु की ओर धकेल देती है और वह वस्तु उस व्यक्ति के मन को हर लेती है।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६१।।

शब्दार्थ : तानि - उनके, सर्वाता - सभी, संयम्य - सयंम से, युक्तः परिपूर्ण, आसीत - स्थिर होना या रमना, मत्परः - मुझमें (आत्मस्वरुप में), वशे - वश में, हि - अवश्य, यस्य - उसकी, इन्द्रियाणि - इन्द्रियाँ, तस्य - उसके, प्रज्ञा - बुध्दि, प्रतिष्ठिता - स्थिर हो जाती है।

भावार्थ : इन्द्रियों को नियंत्रित करके, जो व्यक्ति सदा मेरा अर्थात आत्मस्वरुप का स्मरण करता है वह अवश्य ही इन्द्रियों को वश में कर लेता है। ऐसा व्यक्ति स्थिर बुध्दि वाला होता है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
संङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।६२।।

शब्दार्थ : ध्यायतः - चिन्तन, विषयान् - विषयों का, पुंसः - मनुष्य, संङ्गः - आसक्त, तेषु - उनमें, उपजायते - उत्पन्न होता, सङ्गात् - आसक्ति से, संजायते -उत्पन्न, कामः - इच्छायें, कामात् - इच्छा से, क्रोधः - क्रोध, अभिजायते - जन्म होता है

भावार्थ : जो व्यक्ति विषय-वस्तु का चिन्तन करता है वह उस विषय वस्तु से आसक्त हो जाता है। आसक्ति के कारण उस वस्तु को पाने की इच्छा निर्माण होती है। इच्छा की पूर्ति न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।६३।।

शब्दार्थ : क्रोधात् - क्रोध से भवति - होता है, संमोहः - भ्रम, मोह, सम्मोहः - भ्रम से, स्मृतिविभ्रमः - स्मृति में भ्रम, स्मृतिभ्रंशात् - स्मृति भ्रम होने से, बुध्दिनाशः - विवेक का नाश, बुध्दिनाशात् - बुध्दि नष्ट होने पर, प्रणश्यति - पतन

भावार्थ : क्रोध के कारण व्यक्ति में मूढ़भाव उत्पन्न होता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम उत्पन्न होता है, स्मृति में भ्रम होने पर बुध्दि का नाश होता है और बुध्दि के नाश होने पर व्यक्ति का पतन हो जाता है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।

शब्दार्थ : रागद्वेषवियुक्तै - राग द्वेष से मुक्त, तु - भी, विषयान् - विषय वस्तुओं, इन्द्रियैः - इन्द्रियों के साथ, चरन् - विचरण, आत्मवश्यैः - इन्द्रियों को वश में करनेवाला, विदेयात्मा - आत्मनियंत्रक, प्रसादम् - शांत, अधिगच्छति - प्राप्त करता है।

भावार्थ : जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है ऐसा व्यक्ति पसंद नापंसद के बन्धन से मुक्त रहते हुये, विषय वस्तुओं के

बीच विचरण करते हुये भी शांतचित्त रहता है। अर्थात् विषय-वस्तु उसे आकर्षित नहीं करते।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।६५।।

शब्दार्थ : प्रसादे - शान्त मन में, सर्व दुःखानाम् - सभी दुःख, हानिः - नष्ट, अस्य - उसका, अजायते - उत्पन्न होती है, प्रसन्नचेतसः - प्रसन्न मन वाले, हि - अवश्य, आशु - शीघ्र, बुध्दि - विवेक बुध्दि, पर्यवतिष्ठते - स्थिर हो जाती है

भावार्थ : चित्त के शांत होने पर व्यक्ति के सभी दुख नष्ट हो जाते हैं और मन के प्रसन्न होने पर शिघ्र ही बुध्दि स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।६६।।

शब्दार्थ : नास्ति - नहीं है, बुध्दि - ज्ञान, अयुक्तस्य - अस्थिर मन को, न च - और नही, अयुक्तस्य - अस्थिर भावना - भक्ति भावना, न च - और नही, अभावयतः - भक्तिभाव से हीन, शांतिः - शांति, अशान्तस्य - अशान्त, कुतः - कहाँ से, सुखम् - सुख

भावार्थ : अस्थिर मन वाला व्यक्ति न तो ज्ञान पा सकता है न उसमें भावनायें होती हैं और जिसमें न ज्ञान है न भाव है ऐसे व्यक्ति के जीवन में शांति नहीं आ सकती। अशान्त मन वाले को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।।६७।।

शब्दार्थ : इन्द्रियाणां - इन्द्रियाँ, हि - का, चरताम् - संचालित, सदा - जिस का, मनः - मन, अनुविधीयते - अनुसरण, तस्य - उसकी, हरति - हर लेती है, प्रज्ञाम् - बुध्दि, वायु - हवा, नावम् - नाव, इव - भांति, अम्भसि - पानी में।

भावार्थ : इन्द्रियों द्वारा संचालित मन, बुध्दि को ऐसे बहा ले जाता है (पथ भ्रष्ट कर देता है) जैसे समुद्र में हवा नाव को बहा ले जाती है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६८।।

शब्दार्थ : तस्मात् - अतः, यस्य - जिसका, महाबाहो - महाबाहो, (महाबलशाली) निगृहीतानि - वश में किया, सर्वशः - समस्त, इन्द्रियाणि - इन्द्रियों का, इन्द्रियार्थेभ्यः - विषय वस्तुओं से, तस्य - उसकी, प्रज्ञा - बुध्दि, प्रतिष्ठिता - स्थिर रहती है।

भावार्थ : अतः हे महाबाहो! जिस पुरुष ने इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों को वश में किया है। ऐसे व्यक्ति की बुध्दि स्थिर रहती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।६९।।

शब्दार्थ : या - जो, निशा - रात्रि, सर्वभूतानाम् - सभी लोगों के लिये, तस्याम् - उसमें, जागर्ति - जागते है, संयमी - संयमी लोग, यस्याम् - जिसमें, जागृति - जागते हैं, भूतानि - लोग सा - उस, निशा - रात्रि, पश्यतः - देखकर, मनुः - साधु

भावार्थ : संसारी लोगों के लिये जो रात्रि (आत्मस्वरुप, अज्ञान) है। वह ज्ञानी, सिध्द, पुरुष के लिये जागृति अर्थात असीम आनन्द और ज्ञान का प्रकाश है। जिस सांसरिक माया को इन्द्रियों के विषय वस्तु को संसारी लोग सुख समझकर जागता हैं। ज्ञानी व्यक्ति के लिये वह व्यर्थ और अंधकार में ले जाने वाला है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।७०।।

शब्दार्थ : आपूर्यमाणम् - सब ओर से पूरित/भरा हुआ, अचलप्रतिष्ठम् अविचलित, समुद्रम् - समुद्र, आपः - जल, प्रविशन्ति - प्रवेश करता है, यद्वत - जैसे, तद्वत - उसी प्रकार,

कामा: - सुख के साधन (वस्तुमें), यम् - जिसे, प्रविशन्ति - प्रवेश, सर्वे - सभी, स: - वह, शान्तिम् - शान्ति, आप्नोति - भोगते हुये, न - नहीं, कामकामी - वस्तुओं का लोभी

भावार्थ : जैसे नाना प्रकार की नदियों का जल सब ओर से आकर समुद्र में मिल जाता है किन्तु समुद्र विचलित नहीं होता उसी प्रकार स्थिर बुध्दि वाला व्यक्ति वस्तुओं का भोग करते हुये भी उसमें लिप्त नहीं होता। वस्तु विषय उसे विचलित नहीं करता वह सदा शांत और अनासक्त रहता है।

विहाय कामान्य सर्वान्पुमांश्चरति नि:स्पृह:।
निर्ममो निरहङ्कार: स शान्तिमधिगच्छति ।।७१।।

शब्दार्थ : विहाय - त्यागकर, कामान् - इच्छायें, य: - जिसने, सर्वान - समस्त, पुमान् - व्यक्ति, चरति - विचरण करता है, निस्पृह: - इच्छा से रहित, निर्मम: - अनासक्त, निरहंकार: - निरहंकार, अहंकार से रहित स: - वह, शान्तिम् - शांति से, अधिगच्छति - प्राप्त करता है

भावार्थ : जो व्यक्ति सभी इच्छाओं, वासनाओं का त्यागकर अनासक्त और निरहंकार भाव से इस संसार में विचरण करता है, वह स्थिर बुध्दि वाला सदा शांत चित्त रहता है।

एषा ब्राह्मी स्थिति: पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।७२।।

शब्दार्थ : एषा - यह, ब्राह्मी - ब्रम्ह की, स्थिति: - स्थिति, पार्थ - हे अर्जुन, पार्थ, न - नहीं, एनाम् - इस, प्राप्य - प्राप्त कर, विमुह्यति - मोहित, स्थित्वा - स्थिर रहकर, अस्याम - इस में, अन्तकाले - अन्तसमय में, अपि - भी, ब्रहमनिर्वाण - ब्रम्ह के साथ एकरुप, प्रमृच्छति - हो जाता है।

भावार्थ : हे पार्थ! ब्रम्ह स्थिति को प्राप्त मनुष्य कभी मोहित नहीं होता। जीवन के अन्तिम समय में भी वह ब्रम्ह में ही अवस्थित रहकर ब्रम्ह के साथ एक रुप हो जाता है।

भज गोविंदम्

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।
संप्राप्ते सन्निहिते काले न हि न हि रक्षति डुकृञ्करणे ।।१।।

शब्दार्थ : भज-प्रार्थना करना (स्तुति), गोविन्द - आत्मा, मूढ़मते- हे मोहग्रसित मन, संप्राप्ते - उचित, सन्निहिते - निश्चित, काले - समय में, हि - वास्तव में, न-नहीं रक्षति - रक्षा करता है, डुकृञ्करणे-व्याकरण के नियम (सांसारिक ज्ञान)

भावार्थ : हे मोह ग्रसित मन! आत्मा की स्तुति करो, आत्मा की खोज करो, आत्मा का स्मरण करो क्योंकि निश्चित समय (मृत्यु के समय) आनेपर संसार के नियम और ज्ञान तुम्हारी रक्षा कदापि नहीं कर सकते।

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धि मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ।।२।।

शब्दार्थ : मूढ़-बुध्दिहीन, जहीहि-छोड़ दो, धनागमतृष्णां-धन की तृष्णा या कामना, कुरु-करो, सद्बुध्दिमं-सत्य का विचार, मनसि-मन में, वितृष्णाम्-कामना रहित, यत्-जोभी, लभसे-प्राप्त, निजकर्म-अपने परिश्रम से, उपात्तम-रखो, वित्तम्-धन, तेन-उसी से, विनोदय-प्रसन्न, चित्तम्-मन को

भावार्थ : हे बुध्दिहीन; (मनुष्य)! धन एकत्र करने के लोभ को

त्यागो, अपने मन से इन समस्त कामनाओं का त्याग करो। सत्यता के पथ का अनुसरण करो, अपने परिश्रम से जो धन प्राप्त हो उससे ही अपने मन को प्रसन्न रखो।

नारीस्तनभरनाभीदेशं दृष्ट्वा मा गा मोहावेशम् ।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचिन्तय वारं वारम् ।।३।।

शब्दार्थ : नारी - स्त्री, स्तनभर -स्तनों को, नाभी - नाभि, देशम् - क्षेत्र/स्थान, दृष्ट्वा-देखकर, मा - मत, गाः - शिकार, मोहावेशम् - आकर्षिण में भ्रमित, एतत् - यह, मांस - मांस, वसा - वसा, आदि - आदि, विकारम् - विकृतियों से, मनसि - मन में, विचिन्तय - विचार करो, वारम् वारं - बार-बार

भावार्थ : स्त्री के शरीर पर आकर्षित होकर भ्रमित मत हो। अपने मन में बार-बार यह विचार करो कि यह हाड - मांस से बनी विकृतियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

नलिनीदलगतजलमतितरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ।।४।।

शब्दार्थ : नलिनी दलगतजलम् - कमलपत्र पर पड़ी पानी की बूँद, अति - अत्यन्त, तरलम् - अस्थिर, तद्वत - उसी प्रकार, जीवितम् - जीवन, अतिशय - बहुत ही, चपलम् - अनिश्चित, विध्दि - जानो, व्याधि - रोग, अभिमान - अहंकार, ग्रस्तम् -

ग्रसित, लोकः - संसार, शोक - दुःख, हतम् - डुबाहुआच - और, समस्तम् - सम्पूर्ण

भावार्थ : कमल पत्र पर पड़ी पानी की बूँद अस्थिर होती है उसी प्रकार जीवन भी अत्यन्त क्षण भंगुर है। यह जान लो कि समस्त संसार रोग से पीड़ित, अहंकार में डुबा हुआ और शोक ग्रसित है।

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ।।५।।

शब्दार्थ : यावत् - जब तक, वित्त - धन, उपार्जन - कमाना, सक्तः - क्षमता, तावत् - तब तक, निजपरिवारः - अपना परिवार, रक्तः - आसक्त, पश्चात् - बाद में, जीवति - जीवन, जर्जर - अशक्त, देहे - शरीर में, वार्ताम् - बात, कोऽपि - कोई भी, न - नहीं, पृच्छति - पूछता, गेहे - घर पर

भावार्थ : जब तक शरीर में धनोपार्जन करने की क्षमता होती है तभी तक परिवार जन स्नेह रखते हैं। अशक्त हो जाने पर कोई भी सामान्य बात भी उससे नहीं पूछता।

यावत्पवनो निवसति देहे, तावत्पृच्छति कुशलं गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ।।६।।

शब्दार्थ : यावत् - जबतक, पवन - श्वास, निवसति - रहती है, देहे - शरीर में, तावत् - तबतक, पृच्छति - पूछता है, कुशल

- कुशलता, गेहे - घर के, गतवति - छोड़ना, वायौ - श्वास, देह - शरीर, अपाये - नष्ट, भार्या - पत्नी, बिभ्यति - भयभीत, तस्मिन काये - उस शरीर से

भावार्थ : जब तक शरीर में श्वास चलती है अर्थात् जीवन रहता है तब तक घर के लोग कुशल क्षेम पूछते हैं। किन्तु एकबार श्वास रुक जाने पर और शरीर नष्ट हो जाने पर अर्थात् मृत्यु हो जाने पर पत्नी भी उस शरीर से भयभित हो जाती है।

बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः।।७।।

शब्दार्थ : बालः - बच्चा, तावत् - तब तक, क्रीड़ा - खेल, आसक्तः - आसक्त, तरुणः - युवा, तावत् - तब, तरुणी - युवती, रक्तः - आकर्षण, वृध्दः बुढ़ापा, तावत् - तब, चिन्ता - चिन्ता, सक्तः - आसक्ति, परमे ब्रम्हणि - परमसत्य, ब्रम्ह - कोऽपि - कोई भी, न - नहीं, सक्तः - रुचि

भावार्थ : जबतक बचपन रहता है खेल में रुचि रहती है, युवावस्था में स्त्री के प्रति आकर्षण होता है, वृध्दावस्था में चिन्तायें घेरे रहती हैं। कोई भी उस परमसत्य, ब्रम्ह को पाने की चेष्टा नहीं करता।

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय तदिह भ्रातः।।८।।

शब्दार्थ : का - कौन, ते - तुम्हारी, कान्ता - पत्नी, कः कौन, ते - तुम्हारा, पुत्रः - पुत्र, संसारः - संसार, अतीव - अत्यन्त विचित्रः - विचित्र, कस्य - किसका, त्वम् - तुम, कः - कौन, कुतः - कहाँ से, आयातः - आये, तत्त्व - सत्य, चिन्तय - चिन्तन, तत् - उसका, इह - यहा, भ्रातः - बंधु

भावार्थ : तुम्हारी पत्नी कौन है? कौन तुम्हारा बेटा है? यह संसार बड़ा विचित्र है। कौन तुम्हारा हैं? तुम कौन हो? तुम कहाँ से आये हो? हे बन्धु इस बात का यहाँ चिन्तन करो।

सत्सङ्गत्वे निस्सङ्गत्वं,निस्सङ्गत्वे निर्मोहत्वम् ।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्त्वं,निश्चलतत्त्वे जीवन्मुक्तिः ।।९।।

शब्दार्थ : सत्संगत्वे - भले लोगों का संग, निस्सङ्गत्वम् - वैराग्य, अनासक्ति, निस्सङ्गत्वे - अनासक्ति से, निर्मोहत्वम् - विवेक, निर्मोहत्वे - विवेक से, निश्चलतत्त्वम् - तत्त्वज्ञान, निश्चलतत्त्वे - तत्त्वज्ञान से, जीवन मुक्तिः - मोक्ष

भावार्थ : सत्संग से वैराग्य उत्पन्न होता है, वैराग्य से भ्रम दूर होकर विवेक आता है, विवेक से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है और तत्त्वज्ञान होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वयसि गते कः कामविकारः,शुष्के नीरे कः कासारः ।
क्षीणे वित्ते कः परिवारः,ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ।।१०।।

शब्दार्थ : वयसि गते - आयु बीतने पर, कः - कहाँ, काम विकारः - कामवासना, शुष्के नीरे - पानी के सूख जाने पर, कः कहाँ, कसारः - तालाब, क्षीणे वित्ते - धन के समाप्त, कः - कहाँ, परिवारः - परिवार जन, ज्ञाते तत्त्वे - तत्त्वज्ञान होने पर, कः - कहाँ, संसारः - नश्वर संसार बंधन

भावार्थ : आयुबीत जाने पर काम भाव कहाँ रहता है अर्थात् नहीं रहता, पानी के सूख जाने पर तालाब कहाँ अर्थात् नहीं रहता, धन के समाप्त होने पर परिवार कहाँ अर्थात् कोई अपना नहीं रहता उसी प्रकार परम् सत्य का तत्त्वज्ञान होने पर संसार का बन्धन नहीं रहता।

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं,हरति निमेषात्कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं बुध्वा,ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा।।११।।

शब्दार्थ : मा - मत, कुरु - करो, धनम् - धन, जन - लोग, यौवनम् - युवावस्था, गर्वम् - अभिमान, हरति - नष्ट, निमेषात् - क्षणभर में, कालः - समय, सर्वम् - सभी, मायामयम् - माया से युक्त इदं - यह, अखिलम् - सब कुछ, बुध्वा - बोध होने पर, ब्रम्ह पदम् - सत्य तत्त्व, ब्राम्हण, त्वम् - तुम, प्रविश - प्रवेश, विदित्वा - जानकर

भावार्थ : यौवन, धन और शक्ति पर अभिमान मत करो, समय

अन्तर में इन्हें नष्ट कर देता है। इस संसार को माया से युक्त जानने पर सत्यतत्त्व अर्थात् ब्रम्ह में प्रवेश होता है।

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ।।१२।।

शब्दार्थ : दिनयामिन्यों - दिन और रात, सायम् - सायंकाल, प्रातः - सुबह, शिशिरवसन्तौ - सर्दी और बसन्त ऋतु, पुनः - फिर से, आयातः - आती है, कालः - समय, क्रीडति - खेल, गच्छति - जाती है, आयुः - जीवन, तदापि - फिर भी, न - नहीं, मुञ्चति - छोड़ती, आशावायुः - इच्छाये - अपेक्षायें

भावार्थ : दिन रात, सुबह और शाम, सर्दी और बसंत बार-बार आते - जाते रहते हैं। समय के खेल के साथ जीवन व्यतीत होता रहता है फिर भी इच्छायों और अपेक्षायें पीछा नहीं छोड़ती।

का ते कान्ता धनगतचिन्ता वातुल किं तव नास्ति नियन्ता।
त्रिजगति सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका।।१३।।

शब्दार्थ : का-क्या, ते-तुम्हारा, कान्ता-पत्नी, धनगत-सम्पत्ति, चिन्ता-चिन्ता, वातुल - चिन्तित मोहित मनुष्य, किम्-क्या, तव-तुम्हारा, न-नही, अस्ति-है, नियंता-पालक, त्रिजगति-तीनों लोकों में, सज्जन-संत, संगतिः-साथ, एका-एक ही, भवति-होता है, भव अर्थात तरणे-भवसागर के पार, नौका-नाव

भावार्थ : हे मोहित मनुष्य तुझे पत्नी और धन की इतनी चिंता क्यों है ? क्या उनका पालन करने वाला या देखभाल करने वाला कोई नहीं ? तिनों लोकों में केवल संतों का साथ ही इस भवसागर से पार जाने की नाव है।

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढो ह्युदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ।।१४।।

शब्दार्थ : जटिलः - लंबी जटायें, मुण्डी - सरमुंडाना, लुञ्चितकेशः बिखरे बाल, काषयाम्बरबहुकृतवेषः -भगवावस्त्र और भांति भांति के वेष, पश्यन्नपि च- देखकर भी, न - नहीं, पश्यति - देखते, मूढः - मूर्ख, हि - वास्तव में, उदरनिमित्तम् - पेट भरने के लिये, बहुकृतवेषः - भांति - भांति के वेष

भावार्थ : लंबी - लंबी जटायें, केश रहित सिर, बिखरें बाल, भगवा वस्त्र और तरह-तरह के वेष ये सब अपना पेट भरने के लिये धारण किये जाते हैं। हे मूर्ख तू यह देखकर भी देख नहीं पाता अर्थात् समझ नहीं पाता।

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।।१५।।

शब्दार्थ : अङ्ग - शरीर, गलितम् - जर्जर, पलितम् - सफेद होना, मुण्डम् - सिर, दशन विहिनम्-दन्त हीन, जातम् - चले

गये, तुण्डन-मुख, वृध्दः - वृध्द, याति - होने पर, गृहीत्वा - लेकर, दण्ड - दंड, तदापि - फिर भी, न - नहीं, मुञ्चति - छोड़ता, आशा पिण्डम् - इच्छायें

भावार्थ : अंगक्षीण हो जाने पर सिर के बालों के सफेद होने पर, दाँतों से विहिन मुख होने पर और दंड लेकर चलने वाला वृध्द मनुष्य भी इच्छाओं को नहीं छोड़ता।

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चुबुकसमर्पितजानुः ।
करतलभिक्षस्तरुतलबासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः।।१६।।

शब्दार्थ : अग्रे - सामने, वहिः - अग्नि, पृष्ठे - पीछे, भानु - सूर्य, रात्रौ - रात में, चुबुकसमर्पितजानुः - घुटने में मुंह छिपाकर, करतलभिक्षः - हथेली पर भिक्षा, तरुतल वासः - पेड़ के नीचे रहने वाला, तदपि - फिर भी, न - नहीं, मुञ्चति छोड़ता, आशापाशः - आशाओं का बंधन या इच्छाओं का बंधन

भावार्थ : सूर्यास्त के बाद, रात्रि में आग जलाकर, घुटनों में मुंह छिपाकर सर्दी से बचने वाला, हाथ में भिक्षा का अन्न लेनेवाला और वृक्ष के नीचे रहने वाला भी अपनी इच्छाओं, आशाओं के बन्धन से नहीं छूटता।

कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिंनभजति जन्मशतेन।।१७।।

शब्दार्थ : कुरुते - करता, गंगासागर गमनम् - गंगा सागर (तीर्थों) जाता है, व्रतपरिपालनम् - कठोर नियमों का पालन करता है, अथवा - या, दानम् - दान देता है, ज्ञानविहिनः - अज्ञानी, सर्वमतेन - सभी मतों (धर्मों), मुक्तिम् - मोक्ष, न - नहीं, भजति - पूजा पाठ करता है, जन्म शतेन - सौ जन्मों में

भावार्थ : सभी मतों के अनुसार अज्ञानी मनुष्य सौजन्मों तक चाहे तीर्थों में जाता है या कठोर नियमों का पालन करता है, उपवास रखता है या दान देता है फिर भी उसे मुक्ति नहीं मिलती।

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः ।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः।।१८।।

शब्दार्थ : सुरमंदिर तरुमूल निवास - मन्दिर के पेड़ के नीचे, शय्या - बिछौना, भूतल - भूमि, अजिनम् - अकेले, वासः - निवास, सर्व - सभी, परिग्रह - सम्पत्ति, भोगः - सुखलेना, त्यागः - छोड़कर, कस्य - किसे, सुखं - प्रसन्नता, न - नहीं, करोति - करता, विरागः - विरक्ति

भावार्थ : किसी मन्दिर में पेड़ के नीचे रहने से भूमि को शय्या बनाकर सोने से, अकेले निवास करने से सभी सुख-सम्पत्ति का त्याग करने से न सुख मिलता है और न विरक्ति आती है।

योगरतो वा भोगरतो वा सङ्गरतो वा सङ्गविहीनः ।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं नन्दति नन्दति नन्दत्येव ।।१९।।

शब्दार्थ : योगरतः - योग में लगा हुआ, वा - या, भोगरतः - भोग में लगा हुआ, वा - या, सङ्गरतः - समूह में हो, वा - या, सङ्गविहीनः - अकेले में, यस्य - जिसका, ब्रह्मणि - परब्रह्म में, रमते - लगा रहता, चित्त - मन, नन्दति - प्रसन्न, एव - ही

भावार्थ : कोई योग में लगा हो या भोग में, समूह में रहे या अकेले में जिसका मन ब्रह्म में लगा रहता है वही वास्तव में आनन्द को पाता है।

भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता ।
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा।।२०।।

शब्दार्थ : भगवद्गीता - भगवद्गीता, किञ्चित् - थोड़ा सा, अधीता-अध्ययन किया, गङ्गाजललवकणिका - गंगाजल की एक बूंद, पीता - पिया, सकृदपि - एक बार भी, येन - जिसने, मुरारिसमर्चा - भगवान की आराधना, क्रियेत - किया, तस्य - उसके लिये, यमेन - यम के द्वारा, न - नहीं, चर्चा - चर्चा

भावार्थ : जिसने भगवद्गीता का थोड़ा सा भी अध्ययन किया है, भक्ति रूपी गंगा जल की एक बूंद भी पिया है, ईश्वर की आराधना सच्चे मन से की है, उसकी चर्चा यमराज नहीं करते।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।

इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ।। २१ ।।

शब्दार्थ : पुनरपि - पुनः पुनः, जननं - जन्म, पुनः अपि - पुनः - पुनः, जननीजठरे - माँ के गर्भ में, शयनम् - पड़े रहना, इह - इस, संसारे - संसार में, बहुदुस्तारे - तरना कठिन है, कृपया - कृपा, अपारे - असीम, पाहि - रक्षा, मुरारे - हे मुरारी

भावार्थ : पुनः पुनः जन्म होता है, पुनः पुनः मृत्यु आती है, बार - बार माँ के गर्भ में पड़े रहना यही इस नश्वर संसार का चक्र है इससे पार जाना कठिन है इसलिये हे मुरारी कृपा करके मेरी इससे रक्षा करें। (आत्मज्ञान द्वारा मुझे मुक्ति प्राप्त हो)

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः ।
योगी योगनियोजितचित्तो रमते बालोन्मत्तवदेव ।।२२।।

शब्दार्थ : रथ्याचर्पटविरचितकन्थः - साधारण वस्त्र धारण करने वाला, पुण्यापुण्य - पुण्य और पाप, विवर्जित-रहित, परे, पन्थः-राह, योगी-सिध्द पुरुष, योगनियोजितचित्तः-योग में रमा हुआ मन, रमते-प्रसन्न, आनंदित, बालोन्मत्तवत्-बच्चे के समान, एव-ही

भावार्थ : साधारण, फटे पुराने वस्त्र पहनने वाला, पाप और पुण्य से रहित पथ पर चलने वाला योगी जिसने अपने मन को योग में (आत्मस्वरुप के चिन्तन में) रमा दिया है, छोटे बच्चे के समान सदा आनन्दित रहता है।

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः, का मे जननी को मे तातः ।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्।।२३।।

शब्दार्थ : कस्त्वं - तुम कौन हो, कोहम् - मैं कौन हूँ, कुतः - कहाँ से, आयातः - आया हूँ, का - कौन, मे - मेरी, जननी - माँ, कामे - कौन मेरा, तातः - पिता, इति - यह, परिभावय - पूछताछ, सर्वम् - सभी, असारम् - व्यर्थ, विश्वम् - विश्व, त्यक्त्वा - त्यागकर, स्वप्नविचारम् - स्वप्न के समान

भावार्थ - तुम कौन हो? मैं कौन हूँ? मेरी माँ कौन है? पिता कौन हैं। मैं कहाँ से आया हूँ। इस सांसारिक बातों का कोई सार नहीं, इन्हें व्यर्थ समझ कर एक स्वप्न की भांति त्याग दो।

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्।।२४।।

शब्दार्थ : त्वयि - तुझ में, मयि - मुझमें, च - और, अन्यत्र कहीं भी, एकः - एक, विष्णु - परमात्मा, व्यर्थम् - व्यर्थ ही कुप्यसि - क्रोधित, मयि - मुझमें, असहिष्णुः - अधीर, भव - होते, समचित्तः - समभाव, सर्वत्र - सभी स्थानों पर, त्वं - तुम, वाञ्छसि - इच्छा, अचिरात् - सदा, यदि - यदि, विष्णुत्वम् - परमस्थिति

भावार्थ : तुझमें, मुझमें और सभी स्थानों पर वही परमात्मा व्याप्त है, तुम व्यर्थ ही मुझसे क्रोधित होते हो। यदि तुम उस परम स्थिति

को पाना चाहते हो तो अपने मन को सदा समभाव में रखो।

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम्।।२५।।

शब्दार्थ : शत्रौ - शुए से, मित्रे - मित्र से, पुत्रे - पुत्र से, बन्धौ - बन्धुओं से, मा कुरु - मत करो, यत्नं - प्रयत्न, विग्रह सन्धौ - राग - द्वेष, सर्वस्मिन्नपि - सभी में, पश्य - देखो, आत्मानं - स्वयं को, सर्वत - सभी जगह, उत्सृज - त्याग दो, भेदा ज्ञानम् - भेद रुपी अज्ञान

भावार्थ : शत्रु से, मित्रों से, पुत्रों से, बन्धुओं से शत्रुता या मित्रता मत करो, सभी में और सभी जगह स्वयं को देखने का प्रयत्न करो, इस भेद रुपी अज्ञान का त्याग करो।

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वाऽऽत्मानं पश्यति सोऽहम्।
आत्मज्ञान विहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः।।२६।।

शब्दार्थ : कामम् - इच्छायें, क्रोध - क्रोध, लोभं - लालच, मोहं - भ्रम, त्यक्त्वा - त्यागकर, आत्मानम् - आत्मा को पश्यति - देखता, सः - वह, अहम् - मैं, आत्मज्ञान स्वयं का ज्ञान, विहिनः- विहिन, मूढ़ा - मूर्ख, ते - वे, पच्यन्ते - पीड़ित नरक निगूढाः - नर्क के दास

भावार्थ : अपने आत्म स्वरुप को जानने वाला मनुष्य इच्छाएँ,

क्रोध, लालच और मोह का त्यागकर आत्मतत्व को ही देखता है। किन्तु आत्मज्ञान से विहित मूर्ख संसाररुपी नर्क की पीड़ा को भोगता है।

गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम् ।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्।।२७।।

शब्दार्थ : गेयं - गाने योग्य, गीता - भगवद्गीता, नामसहस्रम् - हजारोंनाम, ध्येयम् - ध्यान, श्रीपति रुपम् - लक्ष्मी पति (विष्णु), अजस्रम - सदा, नेयम - लाये, सज्जन सङ्गे - संतों के साथ, चित - मन, देयम् - देना चाहिये, दीन जनाय - निर्धन लोग, च - और, वित्तम् - धन

भावार्थ : भगवद्गीता का अध्ययन करो, परमात्मा के अनेकों रुपों का ध्यान करो। संतों के संग में अपने मन को लगाना और दीन - निर्धन लोगों को धन दान करना चाहिये।

सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः ।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्।।२८।।

शब्दार्थ : सुखतः - सुख से, क्रियते - क्रिया, रामाभोगः - दैहिक सुख, पश्चात् - बाद में, दन्तः - दुःख, शरीरे - शरीर में, रोगः - रोग, यद्यपि - फिर भी, लोके - संसार में, मरणम् - मृत्यु, शरणम् - अन्त, तदपि - फिर भी, न - नहीं, मुञ्चति -

छोड़ता, पापाचरणम् - पाप का मार्ग

भावार्थ : मनुष्य सुख के लिये देह का भोग करता है और बाद में शरीर में रोग हो जाते हैं। यद्यापि इस संसार में मृत्यु सुनिश्चित है फिर भी लोग पाप का मार्ग नहीं छोड़ते।

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता रीतिः।।२९।।

शब्दार्थ : अर्थमअनर्थम् - धन अकल्याणकारी है, भावय - ध्यान रखो, नित्यं - सदा, नास्ति - नहीं है, तः - इससे, सुखलेशः - थोड़ा भी सुख, सत्यम् - सत्य, पुत्रादपि - पुत्रसेभी, धनभाजाम् - धनवान, भीतिः - भय, सर्वत्र - सभी जगह, एषा - यह, विहिता - निश्चित

भावार्थ : सदा ध्यान रखो, धन अकल्याणकारी होता है, इससे थोड़ा भी सुख नहीं मिल सकता यही सत्य है। धनवान लोग अपने पुत्र से भी भयभीत रहते हैं। सभी जगह यही निश्चित रीति है। यही विधि - का विधान है।

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम् ।
जाप्यसमेत समाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम् ।।३०।।

शब्दार्थ : प्राणायामम् - प्राणों का नियंत्रण, प्रत्याहारम् - इन्द्रियों पर संयम, नित्यानित्य - नित्य और अनित्य, विवेक विचारम्

विवेकपूर्ण विचार, जाप्यसमेत समाधिविधानम् - जप और समाधि का अभ्यास, कुरु - करो, अवधानम् - सजगता से, महत् उच्चधानम् - पूर्ण सजगता के साथ

भावार्थ : प्राणायाम, इन्द्रिय सयंम, नित्य - अनित्य का विवेक पूर्ण विचार, जप और समाधि, योग के इन अंगों का अभ्यास सावधानी पूर्वक, पूर्ण सजगता के साथ करो।

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः ।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ।।३१।।

शब्दार्थ : गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः - गुरु के चरण कमल में समर्पित भक्त, संसारात् - संसारिक बन्धनों, अचिरात् - शीघ्र, भव मुक्तः - मुक्त हो, सेन्द्रियमानसनियम्यात् - मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण करने से, एवम् - इसी प्रकार, द्रक्ष्यसि - दर्शन, निजहृदयस्थम् - अपने हृदय में विराजमान, देवम् - ईश्वर

भावार्थ : स्वयं को गुरु के चरणों में समर्पित करके भक्त शीघ्र ही सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है, इसी प्रकार इन्द्रियों पर संयम रखने पर अपने हृदय में विराजित ईश्वर के दर्शन हो जाते है।

लक्ष्मीसूक्तम् -

ॐ पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षि पद्मसम्भवे।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्।।१।।
अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे।।२।।
पद्मानने पद्मिनि पद्म पत्रे पद्म प्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विश्वमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि संनिधत्स्व।।३।।
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वादिगवेरथम्।
प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे।।४।।
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमश्विनौ।।५।।
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः।।६।।
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत्।।७।।
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम्।।८।।

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम्।।९।।
ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि,
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।।१०।।
आनन्दः कर्दमः श्रीदः चिक्लीत इति विश्रुताः ।
ऋषयः श्रियपुत्राश्च मयि श्रीदेवीर्देवता ।।११।।
ऋणरोगादिदारिद्र्यं पापक्षुदपमृत्यवः।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ।।१२।।
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते ।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः।।१३।।
।।श्रीं श्रियै नमः।।

श्रीसूक्तम्

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।।१।।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्।।२।।
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम्।।३।।
कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्।।४।।
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे।।५।।
आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः।।६।।
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ।।७।।
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्।।८।।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीम् सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।।९।।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।।१०।।
कर्दमेन प्रजा भूता मयि संभव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।।११।।
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।।१२।।
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।।१३।।
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।।१४।।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्।।१५।।
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्।।१६।।
।।क्लीं शिवायै नमः।।

पुरुष सुक्त

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।१।।
पुरुष एवेदं सर्वम् यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।२।।
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।३।।
त्रिपादुर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।।४।।
तस्माद्विराऽजायत विराजो अधि पुरुषः ।
स जातोऽ अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।।५।।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।६।।
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाःअबध्नन्पुरुषं पशुम् ।।७।।
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ।।८।।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ।।९।।

तस्माद्यज्ञात सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मातयजुस्तस्मादजायत ।।१०।।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ।।११।।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य् कौ बाहू कावूरू पादावुच्येते ।।१२।।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।१३।।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ।।१४।।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँऽअकल्पयन् ।।१५।।

सप्तास्यासन्परिधयः त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाः अबध्नन्पुरुषं पशुम् ।।१६।।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।१६।।

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।

तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ।।१७।।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।१८।।

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽ अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्
ह तस्थूर्भुवनानि विश्वा ।।१९।।

यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।।२०।।

रुचं ब्राह्मं जनयंतो देवाऽ अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽ असन्वशे ।।२१।।

श्री श्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुम्मऽ इषाण सर्वलोकम्मऽ इषाण ।।२२।।

।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

आत्म-चिंतन

अपने आत्म के चिंतनमे हरदम जागृत रहना है।
सोहम् सोहम् श्वाँससे अपनी अंतरदृष्टि निरखना है।।धृ।।

चंचल मनको बुद्धिविचारक, शुद्धि सतत ही करना है।
निश्चल कर वृत्तिकी धारा, अंतरमुख में स्थिरना है।।१।।

सहज समाधि चलते हलते सब कामोमें रखना है।
विश्वरूप विश्वात्मक दृष्टि अनासक्ति से चखना है।।२।।

सुख-दुख दोनों जीवधर्म है, इनसे निवृत्त होना है।
सदा आत्म-आनंद की मस्ती, पलपल मे अनुभवना है।।३।।

संत मिले सतसंग लाभकर ज्ञान ध्यान में रमना है।
कर्मफलों का त्याग निहितकर शांति स्थान में जमना है।।४।।

इस मानव जीवन में इतनी मंजिल चढ़कर जाना है।
तुकड्यादास कहे यह बाणी, रोज रोज अनुभवना है।।५।।

विविध मंत्र

महामृत्युंजय

ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टि वर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनामृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात् ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ स्वाहा।

अमृतेश्वरी मंत्र

ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युजंये भगवती चैतन्य। चंद्रे हंससंजीवनी स्वाहाः

दत्त मन्त्र :

ॐ द्रां ह्रीं क्रौं दत्तात्रेयाय विद्महे, योगिश्वराय धीमहि,
तन्नो दत्तः प्रचोदयात्।

भोजन मंत्र

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

अर्थ : इस सारी सृष्टी का आधार ब्रम्ह है और यहाँ होनेवाला प्रत्येक कर्म उसी ब्रम्ह की प्राप्ति के लिये किया गया यज्ञ है।

(जठराग्नि) ब्रम्ह में (भोजन) ब्रम्ह की आहुति (भोजन कर्ता) ब्रम्ह के द्वारा ब्रम्ह को ही अर्पित की जाती है। इस (भोजन यज्ञ) के प्रत्येक कर्म में ही ब्रम्ह है।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।।

अर्थ : कुछ योगी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ करते हैं और कुछ ज्ञानयोगी आत्मप्राप्ति के लिये स्वयं को ब्रम्हरुपी अग्नि में अर्पित करते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग इन्द्रियों को भोजन देते हैं और कुछ ज्ञानी लोग शरीर की रक्षा एवं पोषण के लिये भोजन ग्रहण करते हैं जो कि उस ब्रम्ह तक ले जाने का एक साधन है।

प्रातःस्मरण

प्रातःस्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्वं सच्चित्सुखं
परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं तद्ब्रह्म निष्क
लमहं न च भूतसङ्घ ।।

अर्थ : मेरे हृदय में पूरित होनेवाले सत् चित् आनन्द (सुख) अर्थात जो पर ब्रम्ह स्वरुप है ऐसे आत्मस्वरुप का मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ, क्यों कि जो (ब्रम्ह) जागृति स्वप्न व सुषुप्ति इन अवस्थाओं में नित्य जानने में आता है। वह बाह्य जगत में जो है वही शुध्द ब्रम्ह मैं हूँ। मैं अर्थात् केवल पंच महाभूतों का समुदाय वाला यह शरीर मैं नहीं।

प्रातर्भजामि मनसा वचसामगम्यं वाचो विभान्ति
निखिला यदनुग्रहेण।
यं नेति नेति बचनैर्निगमा अवोचु
स्तंदेवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम्।।

अर्थ : मन-वाणी को अगम्य ऐसा जो ब्रम्हतत्व है। जिसकी कृपासे चारों वाणियाँ शोभाय मान होती हैं और वेदोंने जिसको नेति-नेति इन शब्दों में वर्णन किया है। जिसे अजन्मा व अच्युत (नित्य) व अगम्य (जानने में कठिन) ऐसा कहते हैं। उस भगवान के भी भगवान को मैं प्रातःकाल भजता हूँ।

शांति पाठ

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्

अर्थ : सभी सुखी हो, सभी निरामय रहे। सभी का कल्याण हो और किसी को किंचित मात्र दुःख न हो। आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक इन त्रिविध तापोंकी शान्ति हो।

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अर्थ : वह परमात्मा हम आचार्य और शिष्य एवं वक्ता और श्रोता दोनो की साथ साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ साथ पालन करे। हम दोनों का साथ साथ विद्यार्जन सामर्थ्य का सम्पादन करें। हम दोनों का ज्ञान तेजस्वी हो और हम कभी भी परस्पर द्वेष न करें। आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक इन त्रिविध तापोंकी शान्ति हो।

क्षमा - प्रार्थना

हे प्रभु! हमारे द्वारा जीवन में जाने-अनजाने में जो भी पाप हुए हों, उनके लिये मुझे क्षमा करें।

माता-पिता, गुरुजनों, अपने परिवारजनों अथवा अन्य किसी के प्रति गलत व्यवहार करने, कठोर बोलने, असत्य, अमंगल एवं अविचारपूर्वक किये गये कार्य के लिए, किसी का हृदय (वाणी या कृति से) दुखाने के किए, स्वार्थपूर्ति हेतु दूसरों को फँसाने के लिए तथा अनीतिपूर्व व्यवहार के लिए मुझे क्षमा करें।

संशय, क्रोध, भय व अति उपवास से स्वयं की देह व मन को दी गई पीड़ा के लिए, देह या मन से किये गये प्रत्येक कामुक कृत्य के बदले मुझे क्षमा करें।

मैंने जीवन में जो बहुत-सा समय निरर्थक, आलस्य में गँवाया, भेद भाव किया, झूठ या असत्य का सहारा लिया, आडम्बर किया, वचनों का पालन न किया, किसी की निंदा, की उसके लिए मुझे अत्यन्त पश्चाताप हो रहा है।

हे प्रभु! आप अत्यन्त दयालु हैं। आपकी इच्छानुसार सभी से प्रेम व आदर से व्यवहार करने की बुद्धि मुझे प्रदान करें। जिन्होंने हमें दुःख व पीड़ा दी, उन्हें आप क्षमा कर दें। आपके दिखाये हुये मार्गपर चलने की शक्ति व प्रेरणा दें। आपकी कृपा के लिये कृतज्ञता व्यक्त न करने के बदले मुझे पश्चाताप हो रहा है, मुझे क्षमा कर दें। मुझे क्षमा कर दें। मुझे क्षमा कर दें।।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अर्थ : ॐ वह निरुपाधिक ब्रह्म पूर्ण है और यह सोपाधिक कार्य ब्रह्म भी पूर्ण है क्योंकि पूर्ण से पूर्ण आविर्भूत हुआ है। (तथा तत्व साक्षात्कार के समय एवं प्रलयकाल में) पूर्ण सोपाधिक कार्य ब्रह्म के पूर्णत्व को लेकर अपने में लीन करके पूर्ण निरुपाधिक परब्रह्म ही शेष बचा रहता है। आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक इन त्रिविध तापोंकी शान्ति हो।

पी. डी. एल. परिचय

जीवन में दुखों का मूल कारण हैं सत्य के प्रति अज्ञानता। दुखों के इस दुष्चक्र से निकलने का एक ही मार्ग है सत्य की खोज, जिस ज्ञान की प्राप्ति से जीवन में शाश्वत सुख, शांति और आनन्द प्राप्त होता है। इसीलिए इस सत्य ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ एवं पूर्ण मन जाता है। इस ज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य पूर्णत्व को प्राप्त होता है।

'पाथ ऑफ डिव्हाइन लाइफ' एक ऐसी शिक्षण प्रणाली है जो मनुष्य की चेतना का विकास करती है और उसके मन और बुद्धि के बीच समन्वय स्थापित करके उसे पूर्णत्व की ओर ले जाती है। यही मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य है।

उद्देश्य एवं संकल्पना

पी.डी.एल. की संकल्पना है, सारा विश्व एक परिवार (हिन्द राष्ट्र), ऐसा राष्ट्र जिसका प्रत्येक व्यक्ति सकारात्मक उच्च विचारों के द्वारा जीवन में सुख, शांति और आनन्द करे, जो मानवीय गुणों जैसे प्रेम, शांति, दया, क्षमा और अहिंसा आदि से युक्त हो जिसे 'मानवता धर्म' कहते हैं। इस संकल्पना को साकार करने के लिए तीन प्रकार की शिक्षा की शाखाएँ निर्माण की गयी हैं - मानवता पर आधारित स्वा-शिक्षा, प्रकृति पर आधारित

नैतिक शिक्षा और विज्ञान एवं तकनीक पर आधारित व्यवसायिक शिक्षा प्रणाली। जिससे व्यक्ति के मन को सही दिशा मिले और वह स्वयं के साथ-साथ पूरी मानवता का विकास कर सके।

मानवता पर आधिरित स्वा-शिक्षा

आत्मज्ञान को सर्वोच्च ज्ञान मन जाता है। मानव जीवन का उद्देश्य इसी ज्ञान की खोज कर आत्मा के सत्य स्वरुप का बोध करना है। इस शिक्षण प्रणाली को इस प्रकार से तैयार किया गया है जिसमें व्यक्ति अनुभव, तथ्यों, जानकारी और स्वयं की खोज के आधार पर अपने मन व बुध्दि का विकास कर जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इस पाठ्यक्रम के सभी कोर्स सिध्दांतों और प्रयोगों पर आधारित हैं। जोकि शरीर (भौतिक), मन (सूक्ष्म) और बुध्दि (अति सूक्ष्म) स्तर पर विकास होते हुये मानवीय गुणों का विकास करते हैं।

प्रकृति प्रदत्त नैतिक शिक्षा

प्रकृति सबसे अच्छा शिक्षक है जिसका अनुसरण करके व्यक्ति विकास के पथ अग्रसर हो सकता है। इस शिक्षण प्रणाली में व्यक्ति स्वतंत्र विचारों के बाह्य और आन्तरिक प्रकृति के माध्यम से विकास करना सीखता है। जिससे व्यक्ति अपनी मूल प्रकृति (स्वभाव) के अनुसार विकास का मार्ग चुनता है। जब

व्यक्ति बाह्य तत्वों से प्रभावित होकर अपने मूल स्वाभाव के विरुद्ध आचरण करता है तब उसके व्यक्तित्व का पतन होता है और उसे जीवन में कष्ट, परेशानियों, तनाव असफलताओं आदि का सामना करना पड़ता है। इस शिक्षण शैली के पाठ्यक्रमों को दो भागों में बांटा गया है - १. बालकों की शिक्षा, २. वयस्क की शिक्षा। बालक की शिक्षा माता के गर्भ से ही शुरु हो जाती है।

विज्ञान और तकनीक पर आधारित शिक्षा

पिछले सौ वर्षो में विज्ञानं ने पदार्थ जगत के क्षेत्र में बहुत विकास किया है। शिक्षा की इस शाखा का उद्देश्य विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में नयी-नयी शोध और विकास के रस्ते खोलना है जो व्यक्ति के जीवन का पूर्ण विकास कर सके। जिसमें पदार्थ के साथ-साथ चेतना का भी विकास हो सके। इस शोध का केंद्र हमारा प्राचीन एवं पारम्परिक ज्ञान है क्योंकि वह प्रकृति के अनुकूल था।

विश्व शांति ध्वज

विश्व शांति ध्वज पी.डी.एल. के उद्देश्य और लक्ष्य को दर्शाता है। जहाँ सारे विश्व में शांति और आनन्द की स्थापना हो। एक ऐसी दुनिया जहाँ उच्च विचारों वाले लोग हो जिनके

जीवन में मानवीय गुण जैसे प्रेम, शांति और अहिंसा कूट-कूट कर भरे हों, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति शाश्वत, अनंत आनंद का अनुभव करे।

ध्वज के किनारे कोई सीमा रेखा नहीं बने गयी है जो इस बात का प्रतिक है कि परम सत्य एक ही है। ध्वज का नीला रंग सागर की असीमता का प्रतीक है। यह ब्रह्माण्ड की व्यापकता को भी दर्शाता है। बिना सीमारेखा वाली पृथ्वी एक ऐसे गृह को दर्शाती है जहाँ के लोगों की मानसिकता विस्तृत है जो समस्त पृथ्वी को अपना घर उस पर रहने वालों को अपना परिवार मानते हैं जिसे हम 'वसुधैव कुटुम्बकं' कहते हैं। ध्वज में दो कबूतर शांति और प्रेम के प्रतीक हैं। धरती के चारों ओर निकलने वाली किरणें सम्पूर्ण विश्व की चेतना के विकास का प्रकाश है जोकि उसके प्राणियों की विकसित चेतना को दर्शाता है। विश्व शांति के परिणामस्वरुप शाश्वत, अनंत आनंद की प्राप्ति स्वतः होती है।

उत्सव तिथी		
दिन महिमा	तिथी	दिन विशेष
ध्वज (पौष)	१ जानेवारी	मानवता दिवस
बैंगल	कृष्ण पक्ष	कृषी दिवस
महाशिवरात्री (माघ)	माघ कृष्ण पक्ष १४ चर्तुदशी	स्वयं का बोध
गुडी पाडवा (चैत्र)	चैत्र शुक्ल पक्ष एक प्रतिपदा	वेदान्ता तत्वज्ञान
व्यास पुजा (आषाढ)	आषाढ शुक्ल पक्ष १५ पौर्णिमा	सद्गुरु साक्षात्कार
गणेश चतुर्थी (भाद्रपद)	भाद्रपद शुक्ल पक्ष ४ चर्तुर्थी	दिव्य जीवन पथ
दत्त जयंती (मार्गशीष)	मार्गशीष शुक्ल पक्ष १५ पौर्णिमा	सिध्द परंपरा

दीप यज्ञ

शास्वत और अनंत आनंद

सकल समन्वय

Maharshi Publication
122, Madhani Estate, Dadar (West), Mumbai - 400 028.
Maharashtra, India
Email ID: info@pathofdivinelife.org

www.pathofdivinelife.org